पांच प्रसिद्ध वैज्ञानिक

महेन्द्र भारद्वाज

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-110055

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-110055
शोरूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

शाखाएँ :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-226001
285/J, विपिन बिहारी गागुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500195
3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
खजाची रोड, पटना-800004
माई हीरां गेट, जालन्धर-144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास-600002
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-560009
ब्लैकी हाउस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
613-7, एम० जी० रोड, एर्नाकुलम कोचीन-682035
पान बाजार, गोहाटी-781001

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा प्रकाशित एवं राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि० रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

अमरीकी विज्ञान के विकास की कहानी

में संयुक्त राज्य अमरीका में विज्ञान के विकास की झाँकी को वैज्ञानिकों के जीवन और कार्यों के माध्यम से दर्शाया गया है। इसमें प्रसिद्ध जीव-विज्ञानी टामस हंट मोरगन, विख्यात ज्योतिर्विज्ञानी एडविन पावेल हुबल और अन्य वैज्ञानिकों के अनुसन्धान-कार्यों का भी विवरण है। इसमें बीसवीं सदी के महान् वैज्ञानिकों और एनरिको फर्मी तथा जे० राबर्ट ओपेनहीमर जैसे समकालीनों के कार्यों और उपलब्धियों का भी वर्णन है।

अमरीकी विज्ञान के विकास की कहानी

में विज्ञान और वैज्ञानिकों की उपलब्धियों को उनके ऐतिहासिक संदर्भ में परखा गया है। इसमें इस दृष्टि से भी विचार किया गया है कि ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं का अमरीका में विज्ञान के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में विज्ञान के वर्त्तमान का सर्वेक्षण और अनुसन्धान तथा शिक्षा की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का मूल्यांकन किया है।

लेखक के विषय में

बर्नार्ड जैफ अपना समय विज्ञान के अध्ययन, विज्ञान के इतिहास के अध्ययन और पुस्तक लिखने मे व्यतीत करते हैं। वे रसायनशास्त्र की कई सफल पाठ्य पुस्तकों के लेखक हैं। उन्होंने क्रूसिबिल्स, आउटपोस्ट्स आफ साइंस और केमिस्ट्री क्रिएट्स ए न्यू वर्ल्ड शीर्षक पुस्तकें लिखी हैं। क्रूसिबिल्स पर उन्हें फ्रांसिस बेकन एवार्ड फार दि ह्यूमेनाइजिंग आफ नालेज (ज्ञान के मानवीकरण के लिए फ्रांसिस बेकन पुरस्कार) मिला।

श्री जैफ का जन्म १८९६ मे न्यूयार्क नगर में हुआ। उन्होंने सी० सी० एन० वाई० और कोलम्बिया में अध्ययन किया। प्रथम महायुद्ध मे एक वर्ष की सैनिक सेवा और कुछ समय व्यापार करने के बाद उन्होंने अध्यापन-लेखन शुरू किया।

अमरीकी विज्ञान के विकास की कहानी

(पांच प्रमुख वैज्ञानिकों के जीवन और कार्यों के माध्यम से वर्तमान काल के अमरीकी विज्ञान की प्रगति का परिचय)

तीसरा भाग

लेखक
बर्नार्ड जैफ

अनुवादक
महेन्द्र भारद्वाज

यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड
रामनगर—नई दिल्ली

मुख्य वितरक
एस० चन्द एण्ड कम्पनी

फव्वारा	दिल्ली
रामनगर	नई दिल्ली
माई हीरा गेट	जालन्धर
हजरतगंज	लखनऊ
लैमिंग्टन रोड	बम्बई

This abridgement has been published by arrangement with Simon & Schuster, Inc.

मूल्य : १.००

यूरेशिया पब्लिशिंग हाऊस (प्रा०) लिमिटेड, रामनगर नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं आर० के० प्रिन्टर्स, ८०-डी, कमला नगर, दिल्ली में मुद्रित।

आभार-स्वीकार

इस पुस्तक के लेखन में मुझे अनेक सार्वजनिक और निजी संस्थाओं से जो सहायता मिली, उससे कार्य आसान हो गया और पुस्तक का क्षेत्र व्यापक बन गया। न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी और वाशिंगटन में संसद् के पुस्तकालय ने मुझे अपनी दुर्लभ पुस्तकों के अवलोकन की जो अनुमति दी, उससे मैं अमरीका के आरम्भिक प्रकृतिविदों के लेखों और पुस्तकों का अध्ययन कर सका। सैन मैरीनो, कैलिफोर्निया की हेनरी ई० हंटिंग्टन लाइब्रेरी ने मुझे १६४१ के पतझड़ में 'पाठक' के रूप में अपना नाम दर्ज कराने की इजाज़त दी, जिससे मैं अमरीकी विज्ञान के आरम्भिक दिनों की दुर्लभ पुस्तकों और चित्रों के संग्रह का अध्ययन कर सका। फिलाडेल्फिया की अकादमी आफ नेचुरल साइंसेज, अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसायटी, अमेरिकन एसोसिएशन फार दि एडवांसमेंट आफ साइंस, अमेरिकन एसोसिएशन आफ यूनिवर्सिटी विमैन, बैल टेलीफोन लेबोरेटरीज, क्रोमैटिक टेलिविजन लेबोरेटरीज, वाशिंगटन की कारनेगी इंस्टिट्यूशन, कनाडा के खान और प्राकृतिक सम्पदा विभाग, माऊण्ट विल्सन आब्जरवेटरी, नेशनल एसोसिएशन फार दि एडवांसमेंट आफ कलर्ड पीपुल, वाशिंगटन की स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशन, यूनाइटेड स्टेट्स हाइड्रोग्रैफिक आफिस, संयुक्त राज्य नौसेना अकादमी, संयुक्त राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा, प्रिंस्टन की पामर फिजीकल लेबोरेटरी और येल विश्वविद्यालय के विज्ञान संग्रहालय ने मुझे आवश्यक जानकारी, नक्शे और चित्र देकर मेरी बहुत सहायता की। इस पुस्तक की पाडुलिपि की योजना बनाने और इसे तैयार करने में जिन व्यक्तियों ने मुझे कृपावश अपना समय और ज्ञान दिया, मैं उनका धन्यवाद करता हूँ।

इनमें कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टैकनालाजी के प्रोफेसर ऐरिक टी० बेल, येल विश्वविद्यालय के डाक्टर राल्फ जी० वान नेम; डार्टमाऊथ कालेज के प्रोफेसर रेमंड डब्ल्यू० बैरट; इलिनोइस विश्वविद्यालय के डाक्टर एम० एम० रोड्न; कोरनेल विश्वविद्यालय के डाक्टर एच० एल० एवरेट; सैन-मैरिनो, कैलिफोर्निया की श्रीमती एडविन हुबल; कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टेकनालाजी के पुस्तकालयों के निदेशक रॉजर स्टेन्टन; हार्वर्ड विश्वविद्यालय के सार्वजनिक स्वास्थ्य स्कूल के डाक्टर एडविन बी० विल्सन; जरनल आफ कैमिकल एजूकेशन के डाक्टर नोरिस रेकस्ट्रा; डेप वैली रेंजर, विलार्ड ई०

शंतो; वेलेजली कालेज की केथेरीन एम० ग्रेहमे; साऊथ कैरोलाइना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डाक्टर जे० रीयन मैक्किसाक; ट्रांसिलवानिया कालेज की पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीमती चार्ल्स एफ० नार्टन; डेनियल्सविले, जार्जिया के पोस्टमास्टर श्री जे० ए० बेकर; जैफरसन, जार्जिया के मेयर श्री सी० ई० हार्टी; वकिंगमैन्स इंस्टिट्यूट ग्राफ न्यू हारमनी, इंडियाना के पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष लुइस एम० हसबेंड; हारवर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर चार्ल्स एच० वेमली; व्योमिंग के सेनेटर जोसेफ सी० ओ' महोनी; अमेरिकन एसोसिएशन ग्राफ साइंटिफिक वर्कर्स के डोरिस कैटेल; माइकेलसन परिवार के सदस्य, हैरोल्ड वार्ड और इस पुस्तक में वर्णित अनेक समकालीन वैज्ञानिक हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डाक्टर हर्बर्ट एम० इवांस ने विज्ञान के इतिहास सम्बन्धी अपने पुस्तकालय में अध्ययन की अनुमति देकर मेरी बड़ी सहायता की।

मैं विशेष रूप से कुमारी गालिना टर्र के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने तीसरी बार मेरी पांडुलिपि को लेकर उसका बहुत लगन और कुशलता से सम्पादन किया।

बर्नार्ड जैफ

विषय-प्रवेश

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जार्ज सार्टन और हिस्ट्री ग्राफ साइंस सोसायटी के मुखपत्र ग्राइसिस के सम्पादक का विश्वास था कि "सभ्यता के इतिहास-लेखन मे विज्ञान का इतिहास प्रमुख रूप से सहायक होना चाहिए" और आज कुछ ही लोग उनसे असहमत हो सकते है। मैंने उपलब्ध तथ्यो और जानकारी के अध्ययन मे अपने सामने यह लक्ष्य रखा है, जिससे मैं अमरीका के विज्ञान और उसकी सभ्यता के विकास के सम्भावित संबंधों का दर्शन पा सकूँ।

मैंने इस पुस्तक के पहले भाग का समारम्भ १५८५ में टामस हैरियट के इस नई दुनिया मे आने से किया है, जिसके फलस्वरूप ए ब्रीफ एण्ड ट्रू रिपोर्ट आफ दि न्यूफाउण्डलेंड आफ वर्जिनिया का प्रकाशन हुआ, जो अग्रेजी मे वर्तमान सयुक्त राज्य अमरीका की वनस्पतियों और पशु-पक्षियों पर पहली पुस्तक थी। अत साढ़े तीन शताब्दियों से अधिक की वैज्ञानिक प्रगति का सर्वेक्षण करते हुए मेरे सामने सबसे वडी कठिनाई अनेक वैज्ञानिको मे से कुछ चुने हुए वैज्ञानिकों को लेकर उनके माध्यम से अमरीका मे विज्ञान के विकास की कहानी को कहना था।

सैकडो वैज्ञानिकों मे से ५ वैज्ञानिकों का चुनाव करना आसान काम नही था। अत मैंने चुनाव का एक विशेष तरीका निर्धारित किया। पहला और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आधार यह था कि अनुसंधान के आरम्भिक काल मे किस वैज्ञानिक के कार्यों और योगदान से सर्वाधिक लाभ हुआ। अन्य वातों की उपेक्षा कर इन आरम्भिक अनुसन्धानकर्ताओं को इसलिए प्रथम स्थान दिया गया, क्योंकि किसी नए प्रदेश मे प्रवेश करना प्राय: सबसे अधिक कठिन होता है।

वैज्ञानिकों के इस चुनाव के इससे कम महत्त्वपूर्ण आधार ये थे :—(१) अपने समाज की समस्याओ के प्रति वैज्ञानिक की जागरूकता और अपने समय के राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक आन्दोलनों मे उसका योगदान। (२) वैज्ञानिक का कार्य-क्षेत्र, जिससे पूरी तस्वीर तैयार करने के लिए अधिक से अधिक अनुसन्धान-कार्यों पर विचार किया जा सके। (३) ईजाद और व्यावहारिक विज्ञान के वजाए बुनियादी अनुसन्धान और शुद्ध विज्ञान पर जोर। प्रस्तुत पुस्तक मे उन समकालीन वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का वर्णन किया गया है, जिन्होंने अपने क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य किया।

इस पुस्तक की पाडुलिपि का पहला मसौदा तैयार होने पर अनेक दिलचस्प विचार मेरे मन मे उठने लगे । उदाहरण के लिए हाल तक अमरीका का वैज्ञानिक योगदान मुख्यत: व्यावहारिक विज्ञान और ईजादों तक सीमित था । अमरीका के वैज्ञानिकों ने विज्ञान के नये-नये उपकरण तैयार करने और शुद्ध विज्ञान को टेकनालाजी की उन्नति मे प्रयुक्त करने मे अद्‌भुत प्रतिभा दिखाई । जाज वाशिंगटन ने, सविधान के अन्तर्गत अमरीकी गणराज्य के पहले वर्ष मे १० अप्रैल, १७६० को अमरीका की पेटेंट-प्रणाली को जन्म दिया। १८३६ मे पेटेंट-कार्यालय की स्थापना के समय से १८६० तक इस कार्यालय ने अमरीकियों को ३२ हजार पेटेंट जारी किए । तो आश्चर्य क्या कि अब्राहम लिंकन ने पेटट-प्रणाली को "प्रतिभा की आग का प्रेरणादायक ईंधन" बताया ।

अगले तीस वर्षों मे ४ लाख ५० हजार और पेटेंट जारी किए गए । इनमें एक पेटेंट मार्क ट्वेन को १८७३ मे दिया गया । यह पेटेंट एक ऐसी स्क्रैप बुक के बारे मे था, जिसके कोरे पन्नों पर गोंद की परत चढी हुई थी और जिस पर कतरनें चिपकाने के लिये और गोंद लगाने की आवश्यकता नही होती थी । मार्क ट्वेन के एक जीवनी लेखक ने कहा कि उनकी इस पुस्तक मे एक भी ऐसा शब्द नहीं था, जिसकी उनके आलोचक प्रशसा या निन्दा कर सकते थे । १८६० और १६३५ के बीच १५ लाख और पेटेंट जारी किए गए और अगले दो दशको मे २० लाख और पेटेंट दिए गए । सयुक्त राज्य अमरीका ने जितने पेटेंट जारी किए, उतने अन्य किसी भी देश ने जारी नही किए । अमरीकी पेटेंटो की संख्या ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास से दुगनी और जर्मनी से चार गुनी है । १६३६ मे जब अमरीका के पेटेंट-कार्यालय की शताब्दी वाशिंगटन मे मनाई गई, तो कार्यालय द्वारा जारी पेटेंटो के बारे मे दिलचस्प जानकारी भी दी गई । एक समिति ने अमरीका की बारह महत्तम ईजादों का चुनाव किया और उन्हे तिथि-क्रम से इस प्रकार रखा गया :—

कपास ओटने की मशीन	मैसाचूसेट्स के इली ह्विटनी द्वारा १७६३ मे ईजाद
अगनबोट	पेंसिलवानिया के राबर्ट फुल्टन द्वारा १८०७ मे और कनैक्टीकट के जॉन फिट्च द्वारा १७८६ मे ईजाद
फसल काटने की मशीन	वर्जिनिया के साइरस मैक्कोरमिक द्वारा १८३४ मे ईजाद
टेलीग्राफ	मैसाचूसेट्स के सैमुएल एफ० बी० मोर्स द्वारा १८३७ मे ईजाद

रबड़ का वल्कनीकरण	कनैक्टीकट के चार्ल्स गुडईयर द्वारा १८३६ में ईजाद
सिलाई मशीन	मैसाचूसेट्स के इलियास होवे द्वारा १८४६ मे ईजाद
एयरब्रेक	न्यूयार्क के जार्ज वेस्टिंगहाउस द्वारा १८७२ मे ईजाद
टेलीफोन	अलेक्जेंडर जी० बेल (स्काटलैंड में जन्म) द्वारा १८७६ में ईजाद
बिजली का बल्ब	ओहियो के टामस ए० एडिसन द्वारा १८८० में ईजाद।
लाइनोटाइप मशीन	ओटमर मेरजेनथलर (जर्मनी मे जन्म) द्वारा १८८४ में ईजाद
व्यापारिक उपयोग का अलमुनियम	ओहियो के चार्ल्स एम० हाल द्वारा १८८६ में ईजाद
हवाई जहाज	इंडियाना के विलबर राइट और ओहियो के ओरविल राइट द्वारा १९०३ मे ईजाद

इस सूची मे इन पाँच ईजादों को जोडा जा सकता है :—

(पहला व्यावहारिक) टाइप-राइटर	पेनसिलवानिया के क्रिस्टोफर एल० शोल्स द्वारा १८६८ में ईजाद
फोनोग्राफ	टामस ए० एडीसन द्वारा १८७७ में ईजाद
रेडियो-ट्यूब (तीन इलेक्ट्रोड)	आइओवा के ली द फारेस्ट द्वारा १९०६ में ईजाद
बैकेलाइट	लिओ एच० बैकलैंड (बेल्जियम में जन्म) द्वारा १९०९ में ईजाद
तेल-भंजन (आयल क्रैकिंग)	ओहियो के विलियम एम० बर्टन द्वारा १९१३ मे ईजाद

इनमें से कुछ ईजादें हमारी सीमाओं के बाहर आविष्कृत वैज्ञानिक सिद्धान्तों मे संशोधन और विकास या उनके व्यावहारिक उपयोग द्वारा की गयीं। उदाहरण के लिए पहली व्यावहारिक अगनबोट बनाने के लिए भाप के इंजन को जल-परिवहन के योग्य बनाने के लिए उसमे परिवर्तन और सुधार किया गया। पर टेलीग्राफ, टेलीफोन, बिजली के बल्ब और हवाई जहाज

आदि की ईजाद हमारे वैज्ञानिकों द्वारा पूर्णतः या अंशतः आविष्कृत शुद्ध विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर हुई। कपास ओटने की मशीन, फसल काटने की मशीन और सिलाई-मशीन अमरीकी वैज्ञानिको की यांत्रिक प्रतिभा का परिणाम थी। अन्तर्दहन इजन को मोटरगाड़ियों मे लगाने, उद्योगों के उपयोग की धातुओं, इस्पात और अन्य मिश्र धातुओ की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि, राकेटो के लिए आवश्यक नये किस्म के ईंधनों का विकास और नकली रबड, रेशो, रगो, कीटनाशक दवाओ, ओषधियों, विटामिनों और हारमोनो के निर्माण में हमारे वैज्ञानिको ने जो कार्य किया, वे वैज्ञानिकों के व्यावहारिक उपयोग के कुछ उदाहरण हैं।

संयुक्त राज्य में जो सामाजिक शक्तियाँ कार्य कर रही थी, उनके फल-स्वरूप विज्ञान के व्यावहारिक उपयोग का यह विशाल कार्य सम्भव हुआ। आरम्भ से ही हमारे देशवासी एक अत्यधिक विशाल भू-भाग को मनुष्य के रहने योग्य बनाने का सघर्ष कर रहे थे। यह महाद्वीप प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध था, पर इस सम्पदा के उपयोग के लिए आरम्भिक वर्षों मे पर्याप्त जनशक्ति नही थी। अमरीका के आरम्भिक निवासियो को पर्वतो, नदियों, सूखे मैदानों और आग से तपते रेगिस्तानों को पार करना था। हमारे देशवासियों की अनुसंधान-प्रतिभा को यह एक चुनौती थी और उन्होंने परिवहन और सचार के नये तथा तेज साधनों की ईजाद की तथा मनुष्य का श्रम बचाने वाले यंत्रो के आविष्कार की ओर भी विशेष रूप से ध्यान दिया। अतः अमरीका की अनुसधान-क्षमता और शिल्पिक कुशलता सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई।

इसके फलस्वरूप अमरीका में शक्तिशाली उच्च वर्ग की उत्पत्ति हुई, जो इस महाद्वीप की प्राकृतिक सम्पदा के उपयोग की सम्भावना से चकाचौंध था। रेल-कम्पनियों, तेल-क्षेत्रों, कोयला-खानों और इस्पात-कारखानों के मालिकों और भागीदारों ने विज्ञान का उपयोग कर अत्यधिक धन कमाने की इच्छा से एक-दूसरे से जबर्दस्त होड़ की और एक नए देश का निर्माण किया। जब प्रत्येक वैज्ञानिक उपलब्धि को उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से आंका जाता था, तो अमूर्त या सैद्धान्तिक विज्ञान की ओर ध्यान देने का किसको समय था? अमरीका की विशाल प्राकृतिक सम्पदाओं के उपयोग के लिए जो भयकर होड़ हो रही थी, उसके कारण सैद्धान्तिक अनुसन्धान और दार्शनिक विवेचन की उपेक्षा हुई।

पर फिर भी अमरीका ने, हमारे गणराज्य के आरम्भिक वर्षों में सैद्धान्तिक विज्ञान के क्षेत्र में भी साधारण योगदान दिया। क्या इसका यह कारण है कि

महान् सिद्धान्तकारो को किसी विशेष वातावरण या प्रेरणा की आवश्यकता नही होती, या शिक्षित लोगों को बहुत बड़ी आबादी में मेधावी और प्रतिभाशाली लोग जन्म लेते ही है और अपने कार्यों से समाज को प्रभावित करते है ? हमें यह नही भूलना चाहिए कि प्रमुख वैज्ञानिकों का जन्म अत्यधिक अप्रत्याशित स्थानों पर हुआ। उनके पुरखे इस क्षेत्र में कार्य नही करते थे, उन्हे विशेष प्रशिक्षण भी नही मिला और न ही उन्हे किसी ने असाधारण प्रोत्साहन ही दिया। सामान्य मजदूर के पुत्र जोसेफ हेनरी, सीमान्त प्रदेश के एक सघर्षशील किसान के बच्चे मैथ्यू मौरी, कैलिफोर्निया के किराने के एक साधारण दुकानदार के पुत्र एलबर्ट माइकेलसन और ब्रुकलिन न्यूयार्क के किराने के दुकानदार, आस्ट्रिया के एक प्रवासी के पुत्र आइसीडोर रैबी के जीवन और उनके महान् कार्यों को देखने से इस सम्बन्ध में सन्देह की गुंजाइश नही रह जाती।

अक्सर यह कहा जाता है कि अमरीका के वैज्ञानिकों ने अपने समय की उथल-पुथल की प्रायः पूरी उपेक्षा की और इन सामाजिक समस्याओ की चिन्ता किए बिना वे अपने वैज्ञानिक कार्यो में लगे रहे। पर अमरीकी विज्ञान के इतिहास से इस बात की पुष्टि नही होती कि हमारे वैज्ञानिक सामाजिक समस्याओं के प्रति पूरी तरह उदासीन थे।

फ्रैंकलिन की सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियाँ, जिनके कारण वे अपने समय के प्रथम नागरिक बने, सब लोग जानते है और उनकी यहाँ पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नही है। टामसन ने अपने विश्वासो के अनुसार यूरोप के निर्धन वर्ग की सेवा मे अपने जीवन का एक बहुत बडा भाग लगाया। कूपर यूरोप की राजनीतिक और धार्मिक असहिष्णुता के कारण यूरोप से भाग कर अमरीका गए थे। उन्होने कई वर्ष तक अमरीका मे सरकारी पदो पर कार्य किया और वहाँ धार्मिक हठधर्मिता या कट्टरपन के खिलाफ जबर्दस्त संघर्ष किया। डेविड रिटेनहाउस ने गुलामो के व्यापार का विरोध किया और खुले रूप से फ्रांस की क्रान्ति के उद्देश्यो का समर्थन किया। टामस से ने अपने काल के सर्वहितकारी समाजवाद की प्रेरणा से १८२० मे न्यू हारमनी के उस विशाल सामाजिक प्रयोग मे हिस्सा लिया।

उस विचित्र और चचल प्रतिभा वाले रैफिनेस्क ने लोगो को खुशहाल बनाने की योजना तैयार करने में अपने व्यस्त जीवन के अनेक वर्ष लगाए। उन्होंने अपने तरीके से साधारण लोगों के हित के लिए एक बैंक की स्थापना की, जहाँ साधारण वित्त के लोग उचित ब्याज पर और बिना अत्यधिक जमानत दिए, रुपया ऋण ले सकते थे। उन्हें इस काम में कुछ सफलता भी मिली।

जोसेफ हेनरी ने अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों के व्यावहारिक उपयोग से इनकार कर नवस्थापित स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशन का निदेशक बनना स्वीकार किया। यदि हेनरी अपने अनुसंधानों के व्यावहारिक उपयोग के लिए सहमत हो जाते तो उन्हें इससे अत्यधिक धन प्राप्त हो सकता था। साइमन न्यूकोम्ब ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश किया और वित्तीय विषयों पर बहुत कुछ लिखा। कहा जाता है कि वे द्रव्य-परिमाण सिद्धांत का सही रूप में प्रतिपादन करने वाले पहले व्यक्ति थे। अमरीकी वैज्ञानिकों की सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता को समझाना कठिन नहीं है और परमाणुयुग तथा अंतरिक्ष-यात्रा के युग के आरम्भ से तो यह बात स्वयं अत्यधिक स्पष्ट हो गयी है। अमरीकी विज्ञान को मुख्यतः उन लोगों ने समृद्ध किया जो स्वयं पुरानी दुनिया की असहिष्णुता और हठधर्मिता के शिकार थे या जो राजनीतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए संयुक्त राज्य अमरीका आए थे। अन्य वैज्ञानिक उन स्त्री-पुरुषों के वंशज थे, जो यूरोप के दम घोटने वाले वातावरण को छोड़ कर, एक स्वतन्त्र देश की शुद्ध वायु में साँस लेने के लिए यहाँ आए थे। इनमें से कुछ ही लोग समृद्ध थे। अधिकांश ने स्वयं अपने-आपको शिक्षित किया था। ये लोग बुद्धिमान् थे और लोकतंत्री सरकार के अन्तर्गत स्वतन्त्र व्यक्तियों के अधिकारों और दायित्वों का अर्थ समझते थे।

पिछले ६० वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ये वैज्ञानिक अनुसंधानों की गति में तेजी और सैद्धान्तिक विज्ञान पर अधिक जोर देने की प्रवृत्ति हैं। इन परिवर्तनों का एक कारण अमरीका के सीमान्त की समाप्ति है। व्यग्र, साहसिक और कल्पनाशील व्यक्तियों को इस सीमान्त के अभाव के कारण अपनी शक्ति और क्षमता को अभिव्यक्ति देने के लिए ज्ञान के असीम क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ा। मेधावी गणितज्ञों को अब आरम्भिक व्यापारिक संगठनों और सर्वेक्षणों में उतना अधिक स्थान नहीं मिलता था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान की ओर ध्यान दिया। अब वे हमारे विश्वविद्यालयों और औद्योगिक संगठनों की अनुसंधानशालाओं में अपनी गणित और सैद्धान्तिक प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं।

जान हापकिन्स, शिकागो विश्वविद्यालय, स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टेकनालाजी और इंस्टिट्यूट फार एडवांस्ड स्टडी आदि शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना से विद्यार्थियों को उच्च अध्ययन और अनुसंधान की सुविधा मिली, जिसके लिए पहले उन्हें बाध्य होकर विदेश जाना पड़ता था। अंशकालिक अध्यापन की नई पद्धति के विस्तार के कारण हमारे विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों को कक्षाओं में पढ़ाने में कम समय देना पड़ा, जिसके

फलस्वरूप वे बुनियादी अनुसंधान में अधिक समय लगा सकें। अमरीकी विज्ञान के विकास में वाशिंगटन की कारनेगी इंस्टिट्यूशन, न्यूयार्क के कारनेगी कार्पोरेशन, राकफेलर फाउण्डेशन, कामनवेल्थ फंड, गगेनहीम मेमोरियल फाउण्डेशन, डब्ल्यू० के० केलोग फाउण्डेशन, स्लोएन फाउण्डेशन और फोर्ड फाउण्डेशन आदि अनेक गैर-सरकारी संस्थाओं ने अत्यधिक योग दिया। न्यूयार्क नगर में १९०४ में स्थापित राकफेलर इंस्टिट्यूशन फार मेडिकल रिसर्च जैसी वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाओं की स्थापना के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं से करोड़ों डालर मिले। इन महान् संस्थाओं की आर्थिक सहायता के फलस्वरूप ही माउण्ट पेलोमर की संसार की सबसे बड़ी २०० इंच व्यास की दूरबीन और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय का साइक्लोट्रान बनाये जा सके। इसके अलावा इस सहायता के फलस्वरूप अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाओं की स्थापना हुई।

कुछ हद तक इस कारण से, संसार भर के वैज्ञानिक अमरीका आकर हमारे अनुसन्धानकर्ताओं के साथ काम करने के लिए आकर्षित हुए। यहाँ स्वतन्त्रता और शान्ति के वातावरण में उन्होंने एक दूसरे के कार्य में सहयोग दिया तथा पारस्परिक विचार-विमर्श से एक दूसरे का ज्ञानवर्धन किया। उत्तर जापान के पर्वतीय प्रदेश से हिदेओ नोगुची पीत ज्वर सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए राकफेलर इंस्टिट्यूट फार मैडिकल रिसर्च में आए और दक्षिण अफ्रीका के मैक्स-थीलर ने यहाँ आकर इसी रोग की चिकित्सा के लिए वैक्सीन की ईजाद की, जिस पर उन्हें १९५१ में नोबेल पुरस्कार मिला। इंस्टिट्यूट फार एडवान्स्ड स्टडी में अध्ययन और अनुसन्धान के लिए दो युवक चीनी सैद्धान्तिक भौतिक-विज्ञानी, सुंग दाओ ली और चेन निंग यांग आए और यहाँ उन्होंने आगे जो अनुसन्धान-कार्य किया, उसके फलस्वरूप समता सिद्धान्त को गलत सिद्ध किया जा सका। इन दोनों वैज्ञानिकों को इस कार्य के लिए १९५७ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला।

हमारे कुछ बड़े औद्योगिक संगठनों ने जो आधुनिकतम अनुसन्धानशालाएँ बनायीं, उससे भी विज्ञान की प्रगति में अत्यधिक सहायता मिली। इन प्रयोगशालाओं में पहली महत्त्वपूर्ण प्रयोगशाला जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी की थी, जिसे १९०२ में स्केनेक्टाडी, न्यूयार्क में बनाया गया था। इसके बाद ईस्टमन कोडक कम्पनी, वेस्टिंगहाउस इलेक्ट्रिक एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कम्पनी, गल्फ आयल कम्पनी और ई० आई० दु पोन्त द नेमूर्स एण्ड कम्पनी की अनुसन्धानशालाओं की स्थापना हुई। १९१६ के लगभग इन गैर-सरकारी अनुसन्धानशालाओं की स्थापना को प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली।

महायुद्ध ने हमें तुरन्त और बड़े नाटकीय ढंग से यह सबक दिया था कि हम वैज्ञानिक उपकरणों, कृत्रिम रसायनों और रंगों आदि के लिए पुरानी दुनिया पर अत्यधिक निर्भर हैं। १६२० तक उद्योगों की इन अनुसन्धानशालाओं में ६ हजार वैज्ञानिक काम कर रहे थे और २० वर्ष बाद यह संख्या ३६ हजार हो गयी। अनुसन्धानकार्य पर अरबों डालर खर्च किये गए।

इसके फलस्वरूप अमरीका में बुनियादी अनुसधान और उनके व्यावहारिक उपयोग दोनों में बहुत प्रगति हुई। उद्योगों की दो अनुसंधानशालाओं के पाँच वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिले। ये हैं: जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के इर्विंग लैंग्म्योर और बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज के क्लिनटन जे० डेविसन, जान बारडीन, वाल्टर एच० ब्राटेन और विलियम शाकले। इनमें से पहले दो वैज्ञानिकों को शुद्ध विज्ञान के अनुसंधान और अन्य तीन को ट्रांजिस्टर की ईजाद पर यह सम्मान मिला।

चालीस सरकारी अनुसन्धान सस्थाएँ और अनुसन्धान शालाएँ भी विज्ञान की सेवा कर रही हैं। इनमें से कुछ की स्थापना उन्नीसवीं सदी में हुई। जैसे नौ-सेना की वेधशाला, तट और भू-पृष्ठीय सर्वेक्षण (कोस्ट एण्ड जियोडेटिक सर्वे) भूगर्भ सर्वे और कृषि-विभाग। २०वी शताब्दी के पहले दशक में संयुक्त राज्य खान-कार्यालय, संयुक्त राज्य मानक कार्यालय, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सस्था और संयुक्त राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवा की स्थापना हुई। इनके वैज्ञानिकों ने पैलाग्रा, पीत ज्वर, टाइफाइड, अमीबा और दडाणुज (बैसीलरी) पेचिश, राकी पर्वत-श्रृङ्खला में होने वाला स्पॉटेड ज्वर, मलेरिया और मच्छर नियंत्रण तथा कारखानों में काम करने वाले लोगों के स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किए। उन्होंने बुनियादी भौतिक-विज्ञान में भी प्रशसनीय कार्य किया। इसका उदाहरण राष्ट्रीय मानक कार्यालय के एफ० जी० ब्रिकवेड द्वारा ड्यूटेरियम का अनुसन्धान है।

दूसरा महायुद्ध शुरू होने से पहले ही अमूर्त या सैद्धान्तिक विज्ञान के क्षेत्र में यूरोप के समक्ष अमरीका की हीनता अतीत की बात बन चुकी थी। उच्च वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसन्धान के लिए हमारे युवको का यूरोप जाना बन्द हो चुका था, जहाँ १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनुसन्धान का बहुत विकास हुआ था। हमारी अनुसन्धानशालाओं में बड़े पैमाने पर अनुसन्धान-कार्य हो रहा था और यह विदेशी अनुसन्धानशालाओं के कार्य से किसी भी तरह नीचा नहीं था। कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टेकनालोजी में, टामस हंट मौरगन ने एलफ्रेड स्टरटेवांट तथा संसार के किसी भी भाग के लिए दुर्लभ मेधावी

सहायकों की सहायता से आनुवंशिकता के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मौरगन के जीन सिद्धान्त ने, जिसकी तुलना ऊष्मागतिक के क्षेत्र में जे० विलार्ड गिब्स के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों से की जा सकती है, विज्ञान को क्रमविकास और आनुवंशिकता के रहस्यों को सुलझाने मे अत्यधिक सहायता दी।

पासाडेना मे एक और मेधावी सैद्धान्तिक वैज्ञानिक, रिचर्ड सी० टोलमन उन आँकड़ों और वैज्ञानिक जानकारी के विवेचन में लगे थे, जो एडविन हुवल और अन्य अनुसधानकर्ताओ ने माऊंट विलसन के १०० इंच के दूरदर्शक की सहायता से उपलब्ध किए थे। उन्होंने ब्रह्माण्ड सम्बन्धी जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए, उससे वाध्य होकर आइंसटीन ने भी ब्रह्माण्ड के अपने स्थिर माडेल सिद्धान्त के स्थान पर टोलमन के अस्थिर प्रत्ययात्मक माडेल सिद्धान्त को स्वीकार किया। हुवल ने कानून का अध्ययन छोडकर ज्योतिर्विज्ञान के अध्ययन मे स्वय को लगाया। उन्होने ब्रह्माण्ड सम्बन्धी जो जानकारी उपलब्ध की, वह इस विषय की पूरे ससार की जानकारी का एक बडा भाग है। इस वैज्ञानिक की प्रतिभा यूरोप के किसी भी महत्तम सैद्धान्तिक वैज्ञानिक से की जा सकती है। इन्होंने निरन्तर विस्तृत होते ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर मनुष्य को वह जानकारी दी, पहले जिसकी कल्पना भी सम्भव नहीं थी।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में युवक अनुसंधानकर्ता अर्नेस्ट ओ० लारेंस ने परमाणु के गर्भ पर उस हथियार से प्रहार किया, पहले जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी और इस प्रकार विज्ञान के एक नए और सदा चुनौती देने वाले क्षेत्र के द्वार खोल दिए। उनके साइक्लोट्रान या परमाणु का विच्छेदन करने वाले यत्र इतने प्रभावशाली थे कि वीस से अधिक अन्य अमरीकी विश्वविद्यालयों ने उनकी सहायता से ऐसे ही यत्र अपने यहाँ बनाए और जल्दी ही यूरोप तथा एशिया की अनुसंधानशालायों ने भी उनका अनुसरण किया।

राकफेलर इंस्टिट्यूट फार मेडिकल रिसर्च में, इंडियाना में जन्मे जीवरसायनविद् वेंडेल एम० स्टेनली ने १९३५ मे एक रवेदार प्रोटीन का अनुसंधान किया, जिसमें रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु के सब गुण थे। उन्होंने इस शुद्ध रसायन को तम्बाकू के विषाणु रोग, मोजेक, लगी पत्तियों से अलग किया। ये रवे तम्बाकू के स्वस्थ पौधो में भी मोजेक रोग उत्पन्न कर सकते थे। यद्यपि इनमे प्राण नहीं था, फिर भी ये अपनी रासायनिक मात्रा को जीवित ...
मे मिलने वाले यौगिकों की सहायता से बढ़ाने में सक्षम थे। स्टेनली के रसायनशास्त्र, आयुर्विज्ञान और जीव विज्ञान सम्बन्धी इस अनुसंधान से

भर प्रभावित हुआ और यह आशा बंधी कि विषाणु रोगों को समाप्त किया जा सकेगा।

न्यूयार्क नगर के कोलम्बिया विश्वविद्यालय की एक प्रयोगशाला में हैरोल्ड सी० यूरे ने अत्यधिक विकसित विधि और सैद्धान्तिक आधार पर एक अछूते वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुसंधान किए। उन्होंने हाइड्रोजन के दो भारी समस्थानिकों में से एक का अनुसंधान किया तथा कार्बन और नाइट्रोजन आदि के समस्थानिकों को पर्याप्त मात्रा में अलग किया। इन तथा अन्य समस्थानिकों के मिलने से मनुष्य की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने के लिए अनुसन्धान करना सम्भव हुआ।

कार्ल एन्डरसन ने, जो रावर्ट ए० मिलिकन की प्रेरणा से रहस्यमय ब्रह्माण्ड किरणों सम्बन्धी अनुसन्धान कर रहे थे, पदार्थ के एक नए कण पोजीट्रॉन का अनुसन्धान किया तथा विचित्र कण मेसन का भी पता लगाया। पासाडेना में एण्डरसन की प्रयोगशाला के सामने, मेधावी सैद्धान्तिक, वैज्ञानिक और कुशल प्रयोगकर्ता लाइनस पॉलिंग ने क्वांटम सिद्धान्त के आधार पर रवों की रचना तथा अणुओं के स्थायित्व की कई समस्याओं का स्पष्टीकरण किया। इसके बाद उन्होंने प्रोटीन की रासायनिक रचना और आणविक आयुर्विज्ञान चिकित्सा में अणुओं के उपयोग की समस्याओं को सुलझाने का अत्यधिक जटिल काम साहसपूर्वक अपने हाथों में लिया और एक बार फिर इस नोबेल पुरस्कार विजेता ने विज्ञान के इन नए क्षेत्रों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

सेलमन ए० वाक्समन ने वर्षों तक न्यू ब्रंसविक, न्यू जर्सी के रटजर्स विश्वविद्यालय में माइक्रोबायोलाजी का अध्ययन किया। यह युवक २२ वर्ष की उम्र में, १६१० में, सोवियत रूस के यूक्रेन प्रदेश से भाग कर आया था। १६४३ में उन्होंने एक नई प्रतिजीव औषधि, स्ट्रेप्टोमाइसीन का अनुसन्धान किया, जिसके द्वारा गुरदे तथा मनुष्य के अन्य जटिल रोगों की चिकित्सा की जा सकी। इसके बाद उन्होंने और उनके सहयोगियों ने इंस्टिट्यूट आफ माइक्रोबायोलाजी में ऐसे नए रसायनों की खोजें जारी रखीं। यह अनुसन्धानशाला उनकी स्ट्रेप्टोमाइसीन की बिक्री की रायल्टी से प्राप्त धन से बनायी गई थी।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में दार्शनिक-भौतिकी-विज्ञानी परसी डब्ल्यू० ब्रिजमन ने रवों की रचना और अत्यधिक भारी वस्तुओं के प्रभाव के अध्ययन के लिए पृथ्वी के भीतर के दबाव जितने दबाव का प्रयोग कर अपने अनुसन्धान किए। इसी विश्वविद्यालय में युवक रावर्ट बी० वुडवर्ड ने अत्यधिक जटिल कार्बनिक अणुओं की रचना का पता लगाने के लिए अनुसन्धान किए और कोर्टिसोन,

स्ट्राइचनीन, क्वीनीन (कुनैन) और रेस्पेरीन जैसे रसायनो को पहली बार बनाने मे सफलता प्राप्त की । इसी विश्वविद्यालय की एक और प्रयोगशाला मे जार्ज वाल्ड ने २५ वर्षों के प्रयत्न के बाद दृश्य रसायन के रहस्यो का पता लगाने मे सफलता प्राप्त की।

सेंट लुई के वाशिंगटन यूनिवर्सिटी स्कूल आफ मेडिसन मे पति-पत्नी की एक अनुसंधान टोली ने यह पता लगाने के लिए अनुसन्धान किए कि शर्करा और स्टार्च को खाने के बाद शरीर मे क्या प्रतिक्रिया होती है। ये दम्पति डाक्टर कार्ल एफ० और जर्टी टी० कोरी, १६२२ में प्राग, चेकोस्लोवाकिया से आए थे और ६ वर्ष बाद उन्हे अमरीकी नागरिकता मिल गई थी। उन्होंने इन्सुलिन सम्बन्धी कुछ समस्याओं को सुलझाया और ससार भर के करोड़ों मधुमेह रोगियों को आशा का सन्देश दिया।

और फिर बीसों अनुसन्धानकर्ताओ के वर्षो के अनुसन्धान के बाद यह उत्साहवर्धक घोषणा हुई कि बच्चो के पक्षाघात को समाप्त करने के लिए प्रभावशाली वैक्सीन की ईजाद हो गई है। पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के मैडिकल स्कूल के जोनास्क ई० साल्क ने आयुर्विज्ञान के इतिहास का यह अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण अनुसन्धान किया था और उन्हें इस अनुसन्धान के लिए आवश्यक धन का कुछ भाग नेशनल फाउण्डेशन फार इफेनटाइल पेरेलिइसिस से प्राप्त हुआ।

अमरीकी विज्ञान आज भी शक्तिशाली, कल्पना-प्रवण और उस हद तक सृजनात्मक है, जिसकी कल्पना आसानी से नही की जा सकती। पूरे देश मे विज्ञान के प्रति एक नया उत्साह छाया हुआ है। अमरीकी वैज्ञानिक बिना किसी प्रचार के देश के सुदूर भागों मे महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानों मे लगे हुए है। केवल विश्वविद्यालय, सरकारी और औद्योगिक अनुसंधानशालाएँ ही ऐसे एक-मात्र केन्द्र नही हैं, जहाँ बहुत बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक कार्य हो रहा है। जब मैं अपनी इस पुस्तक के लिए आवश्यक जानकारी इकट्ठा करने के लिए देश का दौरा कर रहा था और वैज्ञानिकों से मिलकर अमरीकी विज्ञान की कहानी का ताना-बाना बुनने का प्रयत्न कर रहा था, तो मैंने देखा कि हमारे आरम्भिक प्रकृतिविदो की भावना अभी भी जीवित है। जब मैं उन मार्गों पर मोटर-यात्रा करता, जहाँ एक समय लेविस और क्लार्क ने अपना आरम्भिक सर्वेक्षण कार्य किया था, या उन पगडंडियों पर चलता जहाँ वृद्ध बरत्राम और रेफीनेस्क ने दुर्लभ वनस्पतियों आदि की खोज की थी, तो मुझे लगता कि हमारे मध्य इन प्राचीन प्रकृतिविदों के प्रतिरूप अभी भी विद्यमान हैं। डेथ वैली नेशनल मान्युमेंट (राष्ट्रीय स्मारक) की रंगीन तलहटी में, जहाँ एक शताब्दी पहले जान सी०

फ्रीमोंट ने कुछ दिलचस्प नए पौधे प्राप्त किए थे, मेरी भेंट एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो आज भी 'जीवित वस्तुओं' को पसन्द करता है।

ऊँची पेनामिण्ट और पयुनेग्ल पर्वत-शृङ्खला के बीच की सुन्दर घाटी में मेरी भेंट एम० फ्रेंच गिलमन से हुई, जिन्होंने एक शताब्दी से अधिक समय पहले बेनिंग, कैलिफोनिया के आस-पास के प्रदेश में दुर्लभ वनस्पतियों का संग्रह शुरू किया था। १९३१ में वे नेशनल पार्क सर्विस की ओर से इस घाटी में पौधे लगाने के काम के सम्बन्ध में आए थे। आज उनका नाम डेथ वैली के वनस्पति-विज्ञान और पक्षी-विज्ञान का पर्याय बन गया है। आरम्भ के अनेकों प्रकृतिविदों की तरह उन्हें स्कूल में शिक्षा नहीं मिली थी और लैटिन के जरा से ज्ञान के बिना भी गिलमन को एक सतर्क संग्रहकर्ता के रूप में मान्यता मिली। गिलमेनिया ल्युटेओला और अन्य कई फूलों का नाम उनके नाम पर रखा गया है। वे और उनके प्रवीण सहधर्मी भी विज्ञान के क्षेत्र में अमरीका की इस महान् यात्रा के समभागी हैं।

विषय-सूची

अध्याय १

टामस हंट मोरगन

(१८६६-१९४५)

अमरीकी विज्ञान की प्रौढ़ता

१९वीं शताब्दी के अन्त में जीव-विज्ञान सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार हो रहा था। इनमें से एक समस्या इस सम्बन्ध में थी कि जीवी ससेचित अण्डे से किस प्रकार विकसित होता है। यह बुनियादी और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समस्या थी। दूसरी समस्या क्रम-विकास और आनुवंशिकता के प्रक्रम से सम्बन्धित थी। १९वीं शताब्दी मे भ्रूण-विज्ञान के सम्बन्ध में यह बात बार-बार दोहराई जाती थी कि व्यक्ति-इतिहास (ओन्टोजेनी), जाति-इतिहास (फाईलोजेनी) मे परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् एक व्यक्ति के विकास का इतिहास उस स्पीशीज के जाति-इतिहास की पुनरावृत्ति करता है। विभिन्न स्पीशीज़ के भ्रूणों के विकास के तरीकों-सम्बन्धी अनेकों अध्ययनों से यह बात सत्य प्रमाणित होती प्रतीत हुई। उदाहरण के लिए, [illegible] का विकासशील भ्रूण सरीसृप और मछलियो जैसे निचली श्रेणि के प्राणियों की विभिन्न स्थितियों से गुजरता हुआ लगता है।

क्या इसी दृष्टिकोण को स्वीकार किए रहना था या इस समस्या को सुल-झाने के लिए सक्रिय प्रयास आवश्यक था? इस समस्या को सुलझाने के लिए व्यावहारिक और वस्तुपरक दृष्टिकोण की [illegible] अमरीकी विज्ञान ने टामस हंट मोरगन के रूप में [illegible] जो जीन सिद्धान्त के प्रतिपादक थे।

मोरगन के माता-पिता, दोनों [illegible] टामस के कालेज मे भरती होने [illegible] कालेज आफ केंटुकी को चुना। [illegible] वे क्या पेशा अपनायेंगे। [illegible] करने का केवल इसीलिए [illegible]

बाद मे जान होपकिन्स विश्वविद्यालय में उन्होंने प्रकृति-विज्ञान और शरीर-क्रिया-विज्ञान का अध्ययन किया।

इस काल में यूरोप के जीवविज्ञानियों का एक वर्ग, जिन्हें जीववादी कहते थे, यह कह रहा था कि जीव-विकास की क्रिया को केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर समझने का प्रयास निरर्थक सिद्ध होगा, क्योंकि जीवन-क्रिया सृजनात्मक शक्तियों के नियन्त्रण मे है, जो विज्ञान के ज्ञान के बाहर की बात है। जब वैज्ञानिकों के एक वर्ग ने रासायनिक और भौतिक आधार पर भ्रूण के विकास का अध्ययन करने का समर्थन किया तो मोरगन ने इस नई दृष्टि को ही उचित समझा। शारीर-विज्ञानी विलहेल्म राक्स के प्रयोग से वे अत्यधिक प्रभावित हुए। राक्स मेढ़क के एक विकासशील अण्डे की पहली दो कोशिकाओं मे से एक को नष्ट करने मे सफल हुए। उन्होने इस प्रयोग से यह सिद्ध किया कि आधा भ्रूण नष्ट होने के बजाए मेढ़क के एक भाग के रूप में विकसित हुआ। वस्तुत. इस प्रयोग द्वारा मनुष्य ने अण्डे के पूर्व-निश्चित विकास की क्रिया को केवल भौतिक परिवर्तन से ही नही बल्कि रासायनिक परिवर्तनों से भी बदल दिया था। जेक्स लोएब ने कृत्रिम तरीको से पहली बार अण्डों को ससेचित करके विज्ञान-जगत् को आश्चर्य-चकित कर दिया। उन्होंने एक समुद्री जीव के अण्डो को रासायनिक और यान्त्रिक तरीकों से ससेचित किया था। उन्होंने तथा उनके विचार के समर्थक अन्य वैज्ञानिको ने अनेकों प्रयोगो से यह स्पष्ट किया कि जीवो के जीवनक्रम मे अनेक प्रकार से परिवर्तन किये जा सकते है। जीववाद के समर्थक वैज्ञानिको ने इस बात को स्वीकार नही किया और डटकर इसका मुकाबला किया।

जीववादियो का कहना था कि भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों से ससेचित अण्डे के विकसित होकर पूर्ण विकसित जीव बनने की अद्‌भुत क्रिया को ससेचन के दौरान जब डिम्भ या अण्डाणु मे शुक्राणु प्रवेश करता है, तो भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होते है। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि इन अपेक्षाकृत महत्वहीन परिवर्तनो के पीछे वे शक्तियाँ काम करती है, जो जीव-विकास क्रिया को प्रेरित कर सफलतापूर्वक इसे सम्पन्न करती है। पर यान्त्रिक सिद्धान्त के समर्थक, दूसरी ओर, यह विश्वास करते थे कि प्रकृति की हर घटना और क्रिया भौतिक और रासायनिक परिवर्तनो का परिणाम होती है और इस पर किसी रहस्यपूर्ण या अन्य शक्ति का नियन्त्रण नही होता। वे यह मानते थे कि कालान्तर मे प्राय., प्रत्येक जटिल जीव-विज्ञान सम्बन्धी क्रिया को वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में दोहरा सकेंगे।

१८९५ मे मोरगन नेपल्स के प्रसिद्ध प्राणि-विज्ञान केन्द्र में अध्ययन के लिए गए, जहाँ उनके साथ के कमरे मे हंस ड्रिस्च काम करते थे। यंत्रवादियों का यह दावा, कि जीवन-विकास-क्रम को भौतिकी और रसायनशास्त्र के सामान्य नियमो से समझाया जा सकता है, अधिक उग्र होता जा रहा था। पर जीववादी भी इन युवक प्राणिविज्ञानियों के विरोध के लिए डटे खड़े थे। दार्शनिक हंस ड्रिस्च ने जीववादियों का समर्थन किया पर मोरगन दूसरे पक्ष की ओर रहे। जीववादी एनटेलेची, जीवनशक्ति और समग्रता आदि जिन शब्दों का प्रयोग करते थे, मोरगन के लिए उनका विशेष महत्त्व नही था, क्योंकि उन्होने अनेक बार कहा कि प्रयोग द्वारा प्रमाणित बातो के अलावा अन्य तर्क देना पर्याप्त नही है। इसी प्रकार उनका विश्वास था कि रहस्यमय शक्ति का विज्ञान से कोई सम्बन्ध नही। पर उन्होने यह भी घोषणा की कि अपनी वर्तमान स्थिति में यंत्रवाद भी बहुत बचकाना या अविकसित दर्शन है।

२०वी शताब्दी के आरम्भ तक सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता था कि जीवियों मे धीरे-धीरे परिवर्तन का कारण केवल वातावरण या स्थानीय परिस्थितियाँ है, जिनके फलस्वरूप कालान्तर में नई स्पीशीज़ उत्पन्न होती हैं। पर यह तर्क पूरी तरह से विश्वास-योग्य नही। सदियों तक चीनियों ने अपनी नवजात बच्चियों के पाँव लोहे के जूतों में बन्द किए, जिससे उन्हे बहुत छोटा रखा जा सके। पर सरकारी आदेश से इस रिवाज की समाप्ति के बाद इन बच्चों के पाँवों को विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता मिली और वे अन्य सामान्य व्यक्तियों के पाँवों की तरह विकसित हुए, मानो लोहे के जूतों में बन्द कर पाँव छोटे करने की क्रिया कभी भी न अपनाई गई हो। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य-निर्मित परिस्थितियों का अगली पीढ़ियों तक कोई प्रभाव नहीं हुआ। यानी छोटे पाँव वाली स्त्रियों की संतति मे भी यह विशेषता नहीं आई। तो क्या कोई ऐसी अन्य क्रिया है, जिसके द्वारा आनुवंशिकता से प्राप्त गुणो के उत्पन्न होने का कारण समझाया जा सकता है ?

एक डच जीवविज्ञानी, ह्यूगो द व्राइज़ को सांध्य-प्रिमरोज की एक नई किस्म अकस्मात् दिखाई दी, जो एम्सटर्डम के पास एक खेत मे उग रहा था। यह एक जंगली पौधा था। द व्राइज़ ने यह पता लगाने के लिए कि क्या यह नये किस्म का पौधा वस्तुतः कोई नई स्पीशीज है, उन्होंने इसके [illegible] बीज बोए। जल्दी ही उन्हें इस बात का पता चल गया कि यह [illegible] वस्तुतः नई स्पीशीज है और उन्हें इस पौधे की कुछ [illegible]। मिलीं। ये पौधे बहुत छोटे-छोटे थे। यह इस बात का [illegible]

एक स्पीशीज़ से दूसरी स्पीशीज़ उत्पन्न हो सकती है, जो स्वतन्त्र रूप से कायम रह सकती है। द व्राइज़ ने इस क्रिया को म्युटेशन या उत्परिवर्तन नाम दिया, जिसके द्वारा किसी प्राचीन स्पीशीज़ से एक नई स्पीशीज़ उत्पन्न होती है और वंशवृद्धि करती है।

यह भविष्य के अनुसंधानों की कुञ्जी थी—जीवियों का प्रजनन करो और उत्परिवर्तन पर नजर रखो। पहली बार विज्ञान को एक ऐसा साधन मिला, जिसके द्वारा क्रम-विकास और आनुवंशिकता को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सकता था। १९०९ में मोरगन ने, जबकि उनकी उम्र ४३ वर्ष की थी, इस साधन को अपनाया, क्योंकि वे अधिकांश जीव-विज्ञानियों की बनिस्बत इसके महत्व को ज्यादा समझते थे। मोरगन इस बात से आश्वस्त थे कि उत्परिवर्तन जीवियों के क्रम-विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और क्रम-विकास की समस्या पर कल्पना पर आधारित सिद्धान्तों के द्वारा विचार करना अब समाप्त हो जाएगा।

अब क्रम-विकास की अनेकों समस्याओं का अध्ययन प्रयोगशाला में किया जा सकता था। मोरगन को सांध्य-प्रिमरोज से संतोष नहीं हुआ, उन्हें बहुत कम समय तक जीवित रहने वाले एक ऐसे जीव की आवश्यकता थी, जिसे प्रयोगशाला में विभिन्न परिस्थितियों में पैदा किया जा सके। उन्होंने चूहों, कबूतरों और यहाँ तक कि पौधों की जूँओं तक पर प्रयोग किए और अन्ततः एक दिन उन्हें एक अन्य उपयुक्त कीट की जानकारी मिली।

सिरका मक्खी (विनेगर फ्लाई), ड्रोसोफिला मेलानोगस्टर, एक बहुत छोटा जीव है, जिसकी लम्बाई चौथाई इंच होती है। इसे अक्सर सड़े हुए फलों पर भिन-भिनाते हुए देखा जाता है। एक दिन में ही इसका अंडा कोमल सफेद डिम्भ या लार्वा में बदल जाता है, जो दो या तीन दिन बाद प्यूपा बन जाता है। और पाँच दिन बाद परदार मक्खी तैयार हो जाती है। दस दिन के भीतर अंडे से मक्खी बनने के इसके जीवन-चक्र के पूरा होने के कारण एक वर्ष में इस मक्खी की तीस पीढ़ियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त अन्य जीवों की अपेक्षाकृत धीमी प्रगति को देखते हुए यह बहुत बड़ी बात थी। मोरगन ने ऐसी कुछ मक्खियाँ उपलब्ध की। उस समय उन्हें इस बात का आभास नहीं था कि कुछ वर्षों के भीतर ही जीव विज्ञान रूपी रसोई की यह सिन्डेरेला आनुवंशिकी की रानियों जैसी पोशाक पहन कर कुछ वर्षों के भीतर ही संसार भर में प्रयोगों में प्रयुक्त सर्वाधिक प्रसिद्ध जीव बन जाएगी।

१९०९ के पतझड़ और सर्दियों में मोरगन ने अपनी इन मक्खियों को हर प्रकार की असाधारण परिस्थितियों में रखा। उन्हें आशा थी कि इस क्रिया से

नई स्पीशीज़ या म्यूटेण्ट (उत्परिवर्ती) प्राप्त होंगे । पर वैज्ञानिक दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं मिला । फिर एक दिन अप्रैल, १६१० में सफेद आँखों वाली एक नर-मक्खी दिखाई पड़ी । यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । सामान्य मक्खियों की आँखें लाल थी । अतः एक स्पष्ट म्यूटेण्ट मिल गया था, जिसका उपयोग आनुवंशिकता-सम्बन्धी प्रयोगों में किया जा सकता था । मोरगन ने सफेद आँखों वाली इस बहुमूल्य मक्खी को लाल आँखों वाली मक्खियों से संकर करने की योजना बनाई । जिस प्रकार उनसे पचास वर्ष पहले युवक ग्रेगर मेण्डेल ने हरी मटर को पीली मटर से अगस्टीनियन मठ में संकर किया था ।

मेंडेल अध्ययन, चिन्तन और प्रयोगों के लिए पर्याप्त समय पाने के लिए पादरी बन गए थे । उनकी अभिरुचि आनुवंशिकता की समस्या में बनी रही और इस सम्बन्ध में अनेक लोगों ने जो प्रयोग किए थे, उससे उपलब्ध आरम्भिक जानकारी से उन्हें पर्याप्त सहायता मिली । इस जानकारी से पता चला कि प्रत्येक जीव की सदा समान संतति नहीं होती, पर यह इस दिशा में प्रयत्नशील होती है । मेंडेल के मन में विचार आया कि क्या गणित के नियमों के आधार पर आनुवंशिकता के लक्षणों को समझाया जा सकता है । इस बात का पता लगाने के लिए उन्होंने विपरीत लक्षणों वाले एक जोड़े की आनुवंशिकता के लक्षणों का अध्ययन शुरू किया ।

जिस वर्ष मोरगन का जन्म हुआ, मेंडेल ने सात वर्ष के प्रयोगों के बाद अपने पौधे उगाने के परीक्षणों का विवरण प्रकाशित किया । उन्होंने देखा कि मटर की एक लम्बी किस्म को कम लम्बी किस्म से संकर करने पर जो पौधे उत्पन्न हुए, वे सब लम्बे थे । जब इस पहली लम्बी पीढ़ी के पौधों को, जिन्हें उन्होंने एफ, कहा, स्वयं ससेचित किया गया तो उससे उत्पन्न पौधों में तीन लम्बे पौधे और एक छोटे पौधे के अनुपात से फसल हुई । इन लम्बे पौधों से केवल लम्बे पौधे ही उत्पन्न नहीं हुए । एक ही किस्म या लक्षण का पौधा उगाने पर मेंडेल का तीन और एक का यह अनुपात सदा सही रहा । जब बहुत बड़ी संख्या में पौधे उगाये गए, तो इसका औसत परिणाम निकला । पहली पीढ़ी में छोटे किस्म के पौधों के प्रायः अन्तर्धान हो जाने और फिर अगली पीढ़ी में उत्पन्न होने से उन्होंने इन छोटे पौधों के इस लक्षण को अप्रभावी, और लम्बे पौधों के लक्षण को प्रभावी, कहा । उन्होंने प्रयोग द्वारा यह भी देखा कि जब दूसरी पीढ़ी के छोटे पौधों को, जिन्हें उन्होंने एफ२ कहा, स्वय-संसेचित किया गया तो उससे उनके अनुरूप केवल छोटे पौधे ही उत्पन्न हुए । पर के लम्बे पौधों को स्वयं संसेचित किया गया तो भिन्न परिणाम ...

एफ$_2$ के केवल तिहाई पौधों के अनुरूप ही लम्बे पौधे उत्पन्न हुए। शेष दो-तिहाई पौधों से, पहले लम्बे एफ$_1$ पौधों की तरह ही तीन लम्बे और एक छोटे पौधे के हिसाब से फसल हुई।

इनमें से कोई भी पौधा मध्यम आकार का नही था और न ही एक पौधे के लक्षण का दूसरे मे मिश्रण हुआ। इन प्रयोगों से मेंडेल ने केवल प्रभावी नियम और एकक लक्षण के नियम का ही अनुसंधान नहीं किया, बल्कि उन्होंने पृथक्करण के बुनियादी नियम की भी ईजाद की। पृथक्करण का नियम सक्षेप मे इस प्रकार है : "माता-पिता मे से प्रत्येक, जो एकक लक्षण अपनी सतति को देता है, वह जननकोशिका मे निश्चित अनुपात में विभाजित हो जाता है और इनका एक-दूसरे पर कोई प्रभाव नही पड़ता।" काले और सफेद लक्षण तथा लम्बे और छोटे पौधे एक-दूसरे मे हस्तक्षेप नहीं करते, बल्कि अपने एकक लक्षणों को कायम और जारी रखते हैं।

३५ वर्ष तक मेंडेल के इस अनुसंधान का विवरण **ट्रांजेक्शन्स आफ दि ब्रून सोसायटी फार दि स्टडी आफ नेचुरल साइन्स** मे छिपा पड़ा रहा। १६०० मे तीन व्यक्तियों ने स्वतन्त्र रूप से इस लेख का अध्ययन किया और मेंडेल के प्रयोगों की सत्यता का पता लगाने के लिए बहुत अनुसधान और परीक्षण किए गए। कैंब्रिज के विलियम बाटेसन ने मेंडेल के सिद्धान्त का समर्थन किया और गिनी पिग की चमडी के रग, आदमी की आंख के रंग, घोड़ों के रग और ऐसे ही अन्य एकक लक्षणो के बारे मे विभिन्न प्रेक्षको ने रिपोर्ट दी। इन सबसे ब्रून के हँसमुख पादरी के निष्कर्ष सही प्रमाणित हुए।

पर मेंडेल के निष्कर्षों को सब वैज्ञानिको ने स्वीकार नहीं किया। स्वयं मोरगन भी इससे पूरी तरह आश्वस्त नही थे। उन्होंने इस बात के प्रति सन्देह प्रकट किया कि, "मेंडेल के इन प्रयोगों में बहुत सामान्य ढग से आनुवंशिकता के असाधारण तथ्यो को प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है।" क्या मेंडेल के निष्कर्ष सही थे? मोरगन इस बात पर गहन विचार करते रहे। उन्होने सोचा, सम्भवतः उनकी मक्खियाँ इस समस्या को सुलझाने मे सहायक हो।

मोरगन ने सफेद आंखो वाली नर-मक्खी और लाल आंखों वाली अक्षत मक्खी का जोड़ा मिलाया। यह सयोग अत्यधिक उर्वर सिद्ध हुआ और नौ दिन बाद उस बोतल मे से मक्खियों का एक झुण्ड निकला, जिसके सावधानी से ईक्षरीकरण और सूक्ष्मदर्शी से जाँच के बाद पता चला कि लाल आंखो वाली १,२३७ मक्खियाँ (एफ$_1$) पैदा हुई हैं। इस बात की आशा भी थी, क्योंकि लाल आंखें प्रभावी लक्षण था। फिर इन १,२३७ मक्खियों मे से कुछ मक्खियों का अन्त:प्रजनन किया गया और दस दिन के भीतर मक्खियों

की दूसरी पीढ़ी (एफ$_2$) उत्पन्न हुई। दूसरी पीढ़ी की इन सब चार हज़ार से कुछ अधिक मक्खियों की इतनी सावधानी से रक्षा और जांच की गई, मानो ये हीरे हों। इस परीक्षण में मोरगन को क्या मिला ? इन मक्खियों में २,४५९ लाल आँखों वाली मादा मक्खियाँ, १०११ लाल आँखों वाली नर मक्खियाँ और ७८२ सफेद आँखों वाली नर-मक्खियाँ थीं। मेंडेल के नियम के अनुसार तीन लाल आँखो वाली मक्खियों और एक सफेद आँखो वाली मक्खी का अनुपात होना चाहिए था और वह इस प्रयोग से लगभग सिद्ध हो गया।

मोरगन को सफेद आँख वाली ड्रोसोफिला मक्खी का ही म्यूटेंट नही मिला। उसी वर्ष मार्च में उन्होंने एक मक्खी देखी, जिसके पंख निश्चित रूप से भिन्न थे और उन्होंने इस मक्खी को स्पेक नाम दिया। मोरगन मक्खियों का प्रजनन करते रहे। उनकी मेजें और अलमारियाँ दूध की बोतलों तथा हर शक्ल की शीशियों से भर गईं। इन प्रयोगों में बहुत म्यूटेंट मिले। वर्ष के अन्त तक मोरगन ने ड्रोसोफिला के १५ विभिन्न म्यूटेंटों का पता लगाया। इनमें से प्रत्येक ने अपने जैसी ही संतति उत्पन्न की। इन म्यूटेंटों को पाल कर उन्होंने इनका अन्त.प्रजनन और संकरण किया और नए म्यूटेंट उत्पन्न होने की जाँच की। यह काम साधारण नहीं था। इतनी अधिक मक्खियों को सुरक्षित रखने और उनके बारे मे अनुसंधान करने के अलावा उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट स्कूल में पढाना भी पड़ता था। इतना ही नही, उन दिनों प्राणि-विज्ञान के एक प्रोफेसर छुट्टी पर चले गए और मोरगन को उनकी भी कक्षाएँ लेनी पड़ी।

इस कक्षा मे कालविन ब्लैकमन ब्रिजेज नाम का एक विद्यार्थी भी था, जिसका जन्म शूयर्ल्स फाल्स, न्यूयार्क मे हुआ था। कालविन की प्राय' पूरे विज्ञान में रुचि थी और उन्होने अनुसंधान वैज्ञानिक बनने का निश्चय किया था। मोरगन के भाषणों से कालविन को आनुवंशिकी की आकर्षक दुनिया का परिचय मिला। कालविन ब्रिजेज ने मोरगन को कहा कि सम्भवत. उन्हे अपनी इतनी अधिक मक्खियों के प्रजनन तथा उन्हे काँच के विभिन्न बर्तनों में संभाल कर रखने के लिए किसी सहायक की जरूरत होगी। पांच वर्ष तक ब्रिजेज मोरगन के अशकालिक सहायक के रूप में काम करते रहे और उन्होंने १९१६ मे डाक्टर की उपाधि ली।

१९११ के आरम्भ में ही मोरगन की एक अनुसंधान-सहायक, कुमारी ऐडिथ एम० वालेस ने पीले पंख वाली एक नर-मक्खी का पता लगाया। इसके बाद मोरगन ने असामान्य उदर वाली एक और मक्खी देखी और उसी

वर्ष १६ नवम्बर को ब्रिजेज ने एक नए म्यूटेंट का पता लगाया, जिसे उन्होंने क्लिस्टर्ड नाम दिया। उन्होंने साधारण से भिन्न पखो वाले दो म्यूटेंटों का और पता लगाया तथा मोरगन ने विशाल पखो की मक्खी और कुमारी मिलड्रेड होग ने द्विगुणवृत्ति वाली टांगो की मक्खी की जानकारी देकर प्रयोगशाला के सब कर्मचारियो को हर्षित किया।

ड्रोसोफिला के अनुसधान का कार्य गतिशील हो रहा था और वर्ष की समाप्ति से पहले पच्चीस नए म्यूटेंटों का पता चला, जिन्हें मिला कर म्यूटेंटो की सख्या चालीस हो गई। तीन वर्ष से कम समय में ही मोरगन की जंगली ड्रोसोफिला ने इतनी नई किस्मो को जन्म दिया, जिसकी कल्पना इससे पहले कोई वैज्ञानिक नही कर सकता था। यह सिद्ध हो गया था कि नई किस्मो के उद्भव मे म्यूटेशन सहायक होता है। आसानी से नियन्त्रित और विविध म्यूटेंटों के इन सग्रह के आधार पर मोरगन आनुवंशिकी को एक सटीक गणित-विज्ञान में परिवर्तित करने की स्थिति मे आ गए थे।

व्यस्तता के इन दिनो मे एक और समस्या उन्हें परेशान करती रही। १६१० मे उन्होंने अपने एक म्यूटेंट, सफेद आंखो वाली मादा मक्खी को, लाल आँखों वाले नर से सकर किया। पर उन्होंने देखा कि दूसरी पीढ़ी में सफेद आँख वाली एक भी मादा मक्खी पैदा नही हुई, यद्यपि सफेद और लाल आँखों वाले नर पैदा हुए। सफेद आंख वाली मादा मक्खी के पैदा न होने की घटना को समझाया नही जा सकता था, क्योकि नियमतः समान सख्या मे नर और मादा संतति उत्पन्न होती है। इस समस्या का हल ढूंढने मे वे एक और समस्या से टकराए। यह स्पष्ट था कि सफेद आंखो का यह लक्षण केवल एक सेक्स को मिला था, जैसे मनुष्यो मे हीमोफीलिया का सक्रमण केवल स्त्री ही करती है। ऐसे लक्षणो को लिंगसहवर्ती कहते है। क्योकि वे नर या मादा मे से किसी एक के साथ सम्बद्ध रहते है। प्रारम्भिक पख और पीले पख जैसे अन्य लक्षण को भी उपयुक्त प्रजनन-परीक्षणो द्वारा लिंगसहवर्ती सिद्ध किया गया।

मोरगन ने इन लिंगसहवर्ती लक्षणों के सम्बन्ध मे एक और विचित्र बात देखी। उदाहरण के लिये, यदि किसी सफेद आंखो वाली मादा के पीले पंख हों और इसे लाल आंखो तथा भूरे पखो वाली मक्खी से सकर किया जाए, तो सफेद आंखो वाली सतति के केवल पीले पंख ही होते है, भूरे पख नही। पर मेंडेल के स्वतन्त्र छँटाव नियम के अनुसार विभिन्न लक्षण संतति में एकक गुणो के रूप मे आते हैं और सकरण के दौरान स्वतन्त्र रूप से अलग हो जाते हैं।

पर मोरगन के उक्त प्रयोग से यह पता चला कि कुछ गुण केवल लिंगसहवर्ती ही नहीं होते, बल्कि वे एक साथ उत्पन्न भी होते है ।

मोरगन ने संकरण प्रयोगों में कुछ लक्षणों की सहवर्तिता का एक अद्भुत सिद्धांत प्रतिपादित किया । उन्होंने कहा कि लिंगसहवर्ती लक्षण इसलिए एक साथ संतति में आते है, क्योंकि वे आरम्भिक कोशिका के नाभिक में एकक या यूनिट के रूप में सम्बद्ध रहते हैं । कुछ लक्षणों के एक साथ समूहों में उत्पन्न होने की प्रवृत्ति को मोरगन ने सहवर्तिता कहा । उन्होंने केवल लिंगसहवर्तिता ही नहीं देखी बल्कि १९११ में यह भी पता लगाया कि काला शरीर और अवशेष पंख यद्यपि एक साथ होते है, पर ये लिंगसहवर्ती लक्षणो के कारण एक साथ उत्पन्न नहीं होते । अर्थात् ये नर या मादा किसी भी मक्खी मे उत्पन्न हो सकते है, पर ये सदा एक साथ उत्पन्न होंगे । काले शरीर वाली मक्खी के मुड़े हुए पंख, गुब्बारे जैसे फूले पंख या स्पेक पंख भी हो सकते है, पर इसमे पीले पंख जैसा कोई लिंगसहवर्ती लक्षण नही हो सकता । उन्होंने लिंग-सहवर्ती समूह को सहवर्तिता समूह संख्या—१, की सज्ञा दी । दूसरे सहवर्तिता समूह सख्या—२, की मक्खियों के काले शरीर, अवशेष पंख और अन्य लक्षण थे । दो वर्ष बाद यह पता चला कि गुलाबी आँखो वाली कोई भी ऐसी मक्खी नही देखी गई, जिसके पीले या अवशेष पंख हो । न ही काले शरीर और सफेद आँखों वाली मक्खी का पता चला, जबकि गुलाबी आँखों और काले शरीर वाली मक्खियों का प्रजनन हुआ और उन्होंने संतति उत्पन्न की । काला शरीर और गुलाबी आँखें एक दूसरे से सम्बद्ध दिखाई पड़े, पर इनका सम्बन्ध दो अन्य सहवर्तिता समूहो से नही था । अत: यह तीसरा सहवर्तिता-समूह हुआ ।

१९१४ की गर्मियों तक जिन अनेक म्यूटेंट लक्षणों का पता लगाया गया और उनकी आनुवंशिकता का सूक्ष्म अध्ययन किया गया, उससे पता चला कि ये तीन भिन्न समूहों के अन्तर्गत आते है । एक बड़ा समूह था, जिसके सब सदस्य लिंगसहवर्ती थे, जिसके अन्तर्गत सफेद आँख और द्विशाख पंख आते हैं । इससे भी बड़े एक समूह के अनेकों लक्षण थे, जैसे अवशेष पंख और काला शरीर, जिनका लिंगसहवर्ती न होना निश्चित था, पर जिनका पारस्परिक सम्बन्ध था । तीसरा इतना ही बड़ा समूह था, जिसके सदस्य न तो लिंग-सहवर्ती थे और न ही इनका दूसरे समूहों के सदस्यों के साथ सम्बन्ध था, पर इनका पारस्परिक सम्बन्ध था । इस तीसरे समूह का आधार शारीरिक लक्षण थे । मोरगन ने कल्पना की कि लक्षणो के तीन समूह होने के कारण जनन-कोशिका में तीन भिन्न पिंड होने चाहिएँ, जिनमे से प्रत्येक सम्बन्धित लक्षणों के अलग क्रमों के लिए उत्तरदायी हो, पर जिनका सम्बन्ध कोशिका के अन्य दो पिण्डों

के लक्षणो से न हो। इस प्रकार मोरगन ने मेंडेल के नियम में एक और नियम जोड़ा, क्योंकि पादरी मेंडेल ने कभी इस लिंगसहवर्तिता की कल्पना भी नहीं की थी।

पर मोरगन के पास अपने संकरण-परीक्षणों के परिणामों के अलावा अन्य क्या परिणाम थे ? वे अपनी इस बात को अत्यधिक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शियों की सहायता से प्रमाणित कर सकते थे कि १६७७ में नर जननकोशिका के आविष्कार के १५० वर्ष बाद यह पता चला कि इसके भीतर एक और छोटा हिस्सा है, जिसे नाभिक कहते हैं। १८८५ तक तीन प्रमुख जीवविज्ञानियों ने स्वतन्त्र रूप से प्रायः एक साथ इस बात की घोषणा की कि जननकोशिका का यह नाभिक आनुवंशिकता का आधार है। बाद मे यह पता चला कि इस नाभिक के और छोटे-छोटे विभाग हैं जिन्हे १८८८ में वालडेयर ने क्रोमोसोम या गुण सूत्रों की संज्ञा दी, क्योंकि ये कोशिका के अन्य भाग की बनिस्वत आसानी से अभिरंजित होते थे। १६०२ मे एक युवक अमरीकी, विलियम सटन ने यह स्पष्ट किया कि जननकोशिका के परिपाक के समय इन क्रोमोसोमों या गुणसूत्रों के व्यवहार से हमे मेंडेल के सिद्धात मे वर्णित आनुवंशिक एककों के अलगाव की क्रिया का पता चलता है। अतः सूक्ष्मदर्शी की सहायता से जननकोशिका की इस चित्रलिपि को धीरे-धीरे स्पष्ट करने और समझने मे सफलता मिली।

प्रयोगों से यह भी पता चला कि विभिन्न जीवो की जननकोशिकाओं मे गुणसूत्रों की संख्या अलग-अलग होती है। ड्रोसोफिला की जननकोशिका के नाभिक में चार विभिन्न क्रोमोसोम मिले जिनमे तीन बड़े और एक बिन्दु जितना छोटा था। तीन बडे क्रोमोसोमो या गुणसूत्रों के लक्षणो के तीन सहवर्तिता-समूहों की उपस्थिति को समझाया जा सकता था। और समय-समय पर मोरगन की प्रयोगशाला मे जो नए म्यूटेंट दिखाई पडे, उन्हे इन तीन क्रोमोसोमों की सहायता से समझाया जा सकता था। इससे लगा कि उनका सहवर्तिता सिद्धांत प्रमाणित हो गया है।

पर बिन्दु जितने छोटे उस क्रोमोसोम का क्या हुआ, जिसे अमरीका के कोशिका के अनुसंधानकर्ताओं मे प्रमुख एडमण्ड बीचर विलसन ने एम (M) क्रोमोसोम की संज्ञा दी ?जब तक १६१४ मे एक दिन हरमन जे० मूलर ने मुड़े हुए पंखों की एक नई मक्खी नही देखी, यह प्रश्न एक पहेली बना रहा। मूलर, मोरगन के अधीन डाक्टरेट की डिग्री के लिये कार्य कर रहे थे। मुड़े हुए पंखों की इस मक्खी के लिंगसहवर्तिता-समूह का पता लगाने के लिए सामान्य तरीका

अपनाया गया। अनेकों चुने हुए प्रजनन परीक्षणों से भी इस नए लक्षण का, क्रोमोसोमों के तीन प्रमाणित सहवर्तिता समूहों से मेल नहीं बैठा। स्पष्ट निष्कर्ष यह था कि इसका सम्बन्ध बिन्दु जितने छोटे चौथे क्रोमोसोम से है जो अब तक नाभिक के बीच चुपचाप पड़ा रहा और किसी म्यूटेंट लक्षण के साथ सम्बद्ध होने की प्रतीक्षा करता रहा। जो बात एक समय सहवर्तिता सिद्धांत की प्रामाणिकता को स्वीकार करने के मार्ग में बाधा लग रही थी, वह इसको प्रामाणिक सिद्ध करने में और सहायक बनी। इसके बाद इसे एम (M) क्रोमोसोम नहीं, बल्कि चौथा क्रोमोसोम ही कहा गया।

एक बार फिर कोलम्बिया की प्रयोगशाला में हर्ष की लहर दौड़ गई। मक्खियों के अनुसंधानकर्ताओं ने इस आशा से अपने प्रयत्नों को द्विगुणित कर दिया कि वे ऐसे लक्षण ढूंढ़ सकें, जिन्हें मुड़े हुए पंखों सम्बन्धी इस चौथे क्रोमोसोम से सम्बद्ध किया जा सके। फिर मोरगन और उनके सहयोगियों ने सूक्ष्मदर्शी का सहारा लिया। मोरगन अपने निष्कर्षों की पुष्टि के लिए उस समय तक सूक्ष्मदर्शी द्वारा हजारों मक्खियों का निरीक्षण करते रहे, जब तक कि उनका सिर दर्द न करने लगा। इस कठिन परिश्रम के फलस्वरूप जल्दी ही ऐसे म्यूटेंटों का पता चला। मिस होग ने सबसे पहले १९१४ में बिना आँख वाली मक्खी का पता लगाया और ब्रिजेज ने पाँच वर्ष बाद एक ऐसी मक्खी देखी, जिसके वक्ष पर शूक नहीं थे और उन्होंने इसे मुँडी हुई मक्खी कहा। उन्होंने इसे मुड़े हुए पंखों वाली और कुमारी होग की बिना आँखों वाली म्यूटेंट मक्खी से सम्बद्ध किया। इसका सम्बन्ध अन्य तीन बड़े क्रोमोसोम समूहों के किसी भी लक्षण से नहीं था। यह प्रमाण बहुत पुष्ट था। इससे अधिक आश्चर्य की यह बात थी कि चारों समूहों के जो म्यूटेंट मिले, उनका आकार सम्बन्धित क्रोमोसोम के अनुपात में था। अतः बिन्दु जितने छोटे क्रोमोसोम के बहुत कम म्यूटेंट मिले, जबकि अन्य तीन क्रोमोसोमों के एक सौ से अधिक भिन्न लक्षणों का पता चला।

मोरगन भाग्यशाली थे कि उन्हें आनुवंशिकी-सम्बन्धी अपने अनुसंधान के लिए तीन ऐसे सहयोगी मिले, जिनके बराबर विज्ञान की किसी भी शाखा के अनुसंधानकर्ता नहीं थे। ये थे ब्रिजेज, मूलर और एक अन्य मेधावी जीव-विज्ञानी एलफ्रेड हेनरी स्टरटीवांट, जिन्होंने अनेकों जटिल समस्याओं को सुलझाने में सहायता दी। मोरगन ने उन्हें ड्रोसोफिला के लिंग-सहवर्ती तत्त्वों के अध्ययन का काम सौंपा, जिसके फलस्वरूप १९१२ में एक उपयोगी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। उस समय स्टरटीवांट की उम्र केवल २१ वर्ष थी।

कुछ जीवविज्ञानियों का विश्वास था कि प्रत्येक क्रोमोसोम में और छोटी-छोटी यूनिटें होती हैं, जिन्हें जीन कहा जाता है और इनमें से प्रत्येक का अलग लक्षण होता है। उदाहरण के लिए सफेद आँखों, पीले पखों और प्रारम्भिक पंखों का कारण पहले क्रोमोसोम को बताया गया। वस्तुत: द व्राइज और अन्य वैज्ञानिकों का यह मत था। पर वे इसकी पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नहीं दे सकते थे। क्रोमोसोमों में जीनों (जीन्स) की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं था। पर यह समझा जाता था कि वे प्रत्येक क्रोमोसोम-तन्तु में एक सीधी रेखा में लगे रहते हैं। स्टरटीवाट ने पहली बार यह कल्पना की कि जीन क्रोमोसोम में बेढंगे ढग से उपस्थित नहीं रहते। बल्कि एक रेखा में रहते हैं और एक जीन के नीचे दूसरा जीन रहता है। आनुवशिकी के इन मनकों की माला, जिसका प्रत्येक मनका निश्चित स्थान पर रहता है और एक पारदर्शक रिबन से जुडा हुआ रहता है, केवल एक काल्पनिक बात नहीं थी। इसके आधार पर एक और सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ, जिससे प्रत्येक क्रोमोसोम में प्रत्येक जीन की आपेक्षिक स्थिति का सही-सही पता लगा।

अभी और बहुत सी बाधाएँ आनी थी। मोरगन एक समस्या को सुलझाते थे कि उसमे जटिल समस्या उनके सामने आ खडी होती थी। बहुत थोड़े ऐसे मामलों का पता चला जिनमे सफेद आँखो और पीले पखों के लक्षण, जिन्हें लिंगसहवर्ती समझा जाता था, अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से दिखाई पडे। उदाहरण के लिए जब लाल आँखों और भूरे पंखो वाली मादा को सफेद आँखो और पीले पखों वाले नर से सकर किया गया तो दूसरी पीढी की प्रत्येक सौ मक्खियों मे से एक मक्खी की लाल आँखें और पीले पख या सफेद आँख और भूरे पख मिले। यह स्पष्ट था कि कही कोई खामी रह गई है। इस क्रिया मे सहवर्तिता से अधिक किसी और बात का भी सम्बन्ध है, अन्यथा सफेद आँखों और भूरे पखों या लाल आँखो और पीले पखो वाली दो नई किस्मो की मक्खियाँ पैदा नहीं हो सकती। सम्भवत. उनके आलोचक सही थे और सहवर्तिता-सिद्धान्त प्रकृति के रहस्यमय नियमो का अच्छा विकल्प नहीं था।

एक बार फिर मोरगन इस स्पष्ट अपवाद का स्पष्टीकरण ढूँढने मे लग गए। यह दर्शाया जा चुका था कि किसी जीव की अडाणु-कोशिका और शुक्राणु के संसेचन के लिए मिलने से पहले ये तीनो कोशिका, जिन्हें गैमिट या युग्मक कहते हैं, अलगाव की एक विचित्र क्रिया मे गुजरते है, जिसे अर्धसूत्रण या ह्रास-विभाजन कहते है। अधिकाश जीवों की प्रत्येक कोशिका मे क्रोमोसोमों के दो सेट होते हैं। उदाहरण के लिए ड्रोसोफिला की जनन-कोशिकाओं मे आठ क्रोमोसोम या चार-चार क्रोमोसोमो के दो सेट होते हैं। संसेचन से पहले

क्रोमोसोमों के प्रत्येक जोड़े के सदस्य एक साथ मिलते हैं, एक-दूसरे से लिपट जाते हैं और अलग हो जाते हैं। प्रत्येक जोड़े का एक सदस्य कोशिका के एक सिरे पर और दूसरा दूसरे सिरे पर पहुँच जाता है। इस क्रिया के पूरे होने पर चार-चार क्रोमोसोमों की दो पंक्तियाँ आमने-सामने बन जाती हैं। इसके तुरन्त बाद यह कोशिका दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है। इनमें से एक कोशिका अभी भी असंसेचित रहती है और इसके चार क्रोमोसोम होते हैं। यह अर्धसूत्रण या ह्रास-विभाजन की क्रिया है, जिसके अभाव में अंडाणु और शुक्राणु के मिलने पर क्रोमोसोम अनन्त संख्या में उत्पन्न हो जाएँगे। जब परिपक्व शुक्राणु किसी परिपक्व अंडाणु के भीतर अपना सिर घुसाता है और उसकी पूँछ बाहर रह जाती है, तो शुक्राणु और अंडाणु के नाभिक एक-दूसरे से पूरी तरह सम्बद्ध हो जाते हैं और एक बार फिर संसेचित अंडाणु में आठ, यानी चार-चार के दो जोड़े, क्रोमोसोम हो जाते हैं। इनमें से एक सेट पिता से और दूसरा माता से उपलब्ध होता है। अतः नया जीवी माता-पिता दोनों के लक्षणों-सहित अपना जीवन-क्रम शुरू करता है।

अर्धसूत्रण की इस क्रिया में पहले विचित्र घटनाएँ घट सकती हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि अपरिपक्व और शुक्राणु के क्रोमोसोमों के दो सेट संसेचन से पहले एक-दूसरे के बराबर पड़े रहते हैं और तुड़ते-मुड़ते रहते हैं। मोरगन का विश्वास था कि तुड़ते-मुड़ने की इस क्रिया के दौरान वे एक-दूसरे से इस तरह उलझ सकते हैं, कि अलग होने पर किसी एक क्रोमोसोम के साथ दूसरे क्रोमोसोम का कुछ भाग चला जाए, जिसके फलस्वरूप एक ऐसा नया क्रोमोसोम तैयार हो, जिसमें दोनों क्रोमोसोमों का थोड़ा-थोड़ा भाग रहे। मोरगन के अनुसार क्रोमोसोमों के इस मिलन से नए सम्मिश्रित लक्षण उत्पन्न होते हैं, क्योंकि कभी-कभी एक ही क्रोमोसोम के दो सदस्य सामान्यतः समान होने पर भी यदा-कदा किसी दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं। इसके आधार पर पीले पर और लाल आँख या सफेद आँख और भूरे पंख वाली डेढ़ प्रतिशत मक्खियों की उत्पत्ति को समझाया जा सका। इसे दो मादाओं के दो मूल या एक्स क्रोमोसोम का क्रासिंग ओवर या पारगति कहा गया।

मोरगन ने देखा कि इस पारगति की क्रिया के आधार पर जीनों (जीन्स) की वास्तविक स्थिति का पता लगाया जा सकता है, जिसकी कल्पना स्टरटीवांट ने की थी। उनका कहना था कि ये रेखा में लगे रहते हैं। मोरगन का तर्क था कि यदि यह सिद्धान्त सही है, और जीनों का निश्चित स्थान रहता है, तो प्रयोगों द्वारा यह निर्धारित किया जा सकता है कि जीनों के बीच कितना अन्तर रहता है, चाहे उन्हें देखा न जा सके। इसकी कुन्जी लाल आँखों और पीले

वाली उन थोड़ी सी मक्खियो में छिपी थी, जो लाल आँखों, भूरे पखों वाली मादा और सफेद आँखों तथा पीले पखो वाले नर के मकर मे उत्पन्न हुई थी। इन स्पष्ट अपवादों को पारगति की क्रिया के आधार पर समझाया जा सका, जो उस समय घटी, जब अलग होने से पहले समजात क्रोमोसोम एक-दूसरे से लिपट रहे थे। यह सवाल उठा कि क्रोमोसोमों के तन्तुओं का किस स्थान पर टूटने का सबसे अधिक भय रहता है ? यह स्पष्ट था कि जीनों के बीच की दूरी से पारगति क्रिया के दौरान उनके अलग होने सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध की जा सकती है। मोरगन ने कहा कि, "पारगति की क्रिया के दौरान वे जीन जो सर्वाधिक दूर होते हैं और बहुत आसानी से अलग हो जाते है, उनके टूटने का सबसे अधिक भय रहता है क्योंकि उनके बीच की दूरी सबसे ज्यादा होती है।" यदि कुछ पक्ष पारगति की क्रिया के दौरान यदा-कदा ही अलग होते हैं, तो इनके जीन बहुत समीप होने चाहिए, जबकि दूसरी ओर कुछ अन्य तत्त्व पारगति की क्रिया के दौरान आसानी से अलग हो जाते हैं, तो क्रोमोसोम में उनकी स्थिति बहुत दूरी पर होनी चाहिए।

इस विचार को प्रयोग द्वारा सिद्ध करने में विलम्ब नही किया गया और इस प्रकार जीवविज्ञान के इतिहास मे सर्वाधिक कठिन और आश्चर्यजनक अनुसधान शुरू हुए। इन प्रयोगो मे लाखों पारगति परीक्षण करने थे, जिन्हें बहुत सावधानी से सचालित किया जाना था। इन प्रयोगो मे लाखो मक्खियों और बड़ी सख्या मे म्यूटेंटो का उपयोग किया जाना था। इस योजना को बहुत कुशलता से तैयार करने और इसके परिणामो के बहुत सावधानी से वर्गीकरण और विश्लेषण की आवश्यकता थी। इस प्रयोग के लिए अनेको कठिनाइयो को दूर करना था। अत्यधिक ठड के कारण बहुत-सी मक्खियो का प्रजनन समय पर नही हो सका। इस विलम्ब को दूर करने के लिए ब्रिजेज ने इन छोटे-छोटे कीटों के लिए विशेष प्रकार के इन्क्यूबेटर तैयार किए। जल्दी ही एक मक्खी-नक्शा तैयार करने के महान् कार्य का विस्तृत विवरण बहुत सावधानी से तैयार किया गया और क्रोमोसोमों की रचना का रहस्य उद्घाटित होने लगा।

जब पहले परिणाम मिलने शुरू हुए तो मोरगन ने इन्हे अपने सिद्धान्त के अनुसार घटाना शुरू किया। उन्होंने तर्क दिया कि पीले पंखो और सफेद आँखो वाली मक्खियो के १.५ प्रतिशत मामलों मे क्रासिंग-ओवर या पारगति होती है तथा हमें द्विशाख पंखो और सफेद आँखो वाली मक्खियो की पारगति के ५.४ प्रतिशत मामलों का पता चला। इससे यह स्पष्ट होता है कि द्विशाख पंखों के जीन पीले पखों के जीन की बनिस्बत सफेद आँखों के जीन से अधिक दूर हैं। यदि पीले पखो के जीन की तुलना में द्विशाख पखो का जीन सफेद आँखों के

जीन की विपरीत दिशा में है, तो पीले पंखों के जीन से इसका क्रासिंग-ओवर लगभग ६·६ प्रतिशत होने का अनुमान है। यदि दूसरी ओर द्विशाख पख का जीन उसी ओर है, जिस ओर पीले पख का जीन है, तो पीले पख के जीन के साथ इसका क्रासिंग-ओवर ३·६ प्रतिशत होना चाहिए। ६·६ प्रतिशत का आँकड़ा वास्तविक परीक्षण के आधार पर निर्धारित किया गया था। अतः मोरगन ने क्रोमोसोम-नक्शे में द्विशाख पंख के जीन को सफेद आँख के जीन के नीचे रखा। इस नक्शे को देखने के लिए इसे चालीस हजार गुना आवर्धित किया जाता है। ऐसे ही प्रयोगों और तर्कों के आधार पर अनेकों अन्य जीनो की स्थिति क्रोमोसोम-नक्शे में निर्धारित की गई।

ड्रोसोफिला के इस जीन नक्शे की तुलना रासायनिक तत्त्वो की परमाणु सख्या-सारणी से की जा सकती है। इस नक्शे को और इसमें निर्धारित विभिन्न जीनो के स्थानों में बार-बार संशोधन करना पड़ा। नए म्यूटेंटों की प्राप्ति, क्रासिंग-ओवर के नये प्रयोगो से उपलब्ध जानकारी अस्थायी रूप से अवर्णित और ऊपर से समान दिखाई पड़ने वाले परिणामो की खोज के कारण इस क्रोमोसोम-नक्शे में बार-बार परिवर्तन करना पडा। इन अनिवार्य परिवर्तनो की जबर्दस्त आलोचना हुई और इससे उन लोगों का क्रोध और भड़का, जो आनुवंशिकता के इस 'भयावह" सिद्धान्त को समाप्त करना चाहते थे। मोरगन इस विरोध से कभी भी विशेष चिन्तित नही हुए। उन्हें अपने जीन-सिद्धान्त की सत्यता मे आस्था थी।

मई, १९२२ मे मोरगन की प्रयोगशाला से एक लेख प्रकाशित हुआ, जिससे उनकी ख्याति और बढी। यह लेख लिलियन वी० मोरगन ने लिखा था, जिससे अठारह वर्ष पहले हमारे इस वैज्ञानिक ने विवाह किया था। श्रीमती मोरगन ने स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हुए एक ऐसी मादा मक्खी का पता लगाया, जिसमे नर के कुछ लक्षण थे। इस चितकबरी मक्खी ने सबको उलझन मे डाल दिया। इसके शरीर के एक भाग पर कुछ अप्रभावी लिंगसह-वर्ती लक्षण पूरी तरह से बदल गए थे। इसका सिर, उदर, टाँगे, रग, आँखें, पंख, संतुलक और उदर का आकार न तो एक पूर्ण विकसित नर का था और न ही पूर्ण विकसित मादा का। इसके कुछ लक्षण नर के और कुछ मादा के थे। श्रीमती मोरगन ने मक्खियों की इस विचित्र उभयलिंगी जाति की सैंकड़ों मक्खियो को उत्पन्न किया। उन्होंने इनका संकरण और अन्तःप्रजनन तथा इनके विभिन्न क्रोमोसोम नक्शों के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया और इस विचित्र उभयलिगी कीट के जीन की स्थिति निर्धारित करने की सम्भावनाओं पर विचार किया।

तुरन्त उनके दिमाग में एक सैद्धान्तिक हल आया। एक अमरीकी वैज्ञानिक सी० ई० मैक्क्लंग ने टिड्डों के बारे में अनुसंधान करते हुए १६०१ में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था कि जीव का लिंग एक या दो क्रोमोसोमों की उपस्थिति से निर्धारित होता है। अब इन क्रोमोसोमों को एक्स क्रोमोसोम कहा जाता है। चार वर्ष बाद प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि कुछ कीटों की मादाओं में पहले सहवर्ती समूह में जो क्रोमोसोमों का जोड़ा होता है, उनमें दो एक्स क्रोमोसोम होते हैं। और नरों में केवल एक एक्स क्रोमोसोम होता है। मिस स्टीवेन्स ने यह दर्शाया था कि ड्रोसोफिला इस वर्ग के अन्तर्गत आती है। अतः जिन संसेचित अंडों में दो एक्स क्रोमोसोम होते हैं, उनसे मादा और जिनमें एक एक्स और एक वाई क्रोमोसोम होता है, उनसे नर कीट उत्पन्न होते हैं। क्रोमोसोमों की इस स्थिति से कीट का लिंग निर्धारित होता है। ये एक्स और वाई क्रोमोसोम सहवर्ती समूह नम्बर—१ बनाते हैं, जिनके सब जीन एक साथ ही भावी पीढ़ियों को मिलते हैं।

लिंग निर्धारण की इस एक्स-वाई क्रिया के ज्ञान से मोरगन उन लक्षणों को निर्धारित कर सके, जो लिंगसहवर्ती होते हैं। नर और मादा के, लिंग-क्रोमोसोमों के जोड़ों के अन्तर के इस महत्त्वपूर्ण अनुसंधान ने यह सम्भव कर दिया कि मनुष्य की वर्णअन्धता, रात्रिअन्धता, और हीमोफीलिया, जो लिंग-सहवर्ती लक्षण होते हैं, के कारण को आसानी से समझा जा सके।

श्रीमती मोरगन ने तर्क दिया कि मादा मक्खी के दो एक्स क्रोमोसोम एक अंडाणु में प्रवेश कर सकते हैं, यदि अर्धसूत्रण के समय इनके दो भाग किसी दुर्घटनावश अलग न हो सकें। इसके फलस्वरूप एक ऐसा संसेचित अंडाणु तैयार होगा, जिसमें नर और मादा दोनों के क्रोमोसोम होंगे। यदि वस्तुतः यही बात हुई तो इसे सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। उन्होंने बड़ी सावधानी से एक मादा अंडाणु को चुना और इसमें चीरा लगाया। उन्हें वस्तुतः इसके भीतर वी (V) की शक्ल में जुड़े दो क्रोमोसोम मिले। इन क्रोमोसोमों के सिरे एक दूसरे से जुड़े हुए थे। यह कोशिकात्मक तस्वीर उनके आनुवंशिक तथ्यों और विवरणों के अत्यधिक अनुरूप थी। उस मक्खी में, जिसमें नर और मादा दोनों के लक्षण थे, नर और मादा दोनों के क्रोमोसोम थे। अतः उसमें दोनों लिंगों के लक्षण प्रकट हुए। यह श्रीमती मोरगन का आखिरी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं था। १६५२ में, ८२ वर्ष की उम्र में, अपनी मृत्यु के दिन तक वे बहुमूल्य अनुसंधानों से विज्ञान को समृद्ध करती रहीं।

ये नए तथ्य जीन सिद्धात को सत्य सिद्ध करने के अत्यधिक पुष्ट प्रमाण थे। इस समय तक वाटेसन बहुत असमजस से ड्रोसोफिला सम्बन्धी अनुसधानो को देख रहे थे। १९२२ मे वे मोरगन से भेंट करने गए और ड्रोसोफिला प्रयोगशाला के काम को पूरी तेजी से होते हुए देखा। वहाँ कोशिका सम्बन्धी उपलब्ध जानकारी को देखकर वे आश्चर्य में पड़ गए। यद्यपि ये प्रमाण उनकी विचारधारा के अनुरूप नही थे, पर उन्हें इसकी सफलता को स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने बहुत उत्तेजना से इंगलैंड में अपनी पत्नी को पत्र लिखा : "इस बात पर अपनी हार स्वीकार करने के अलावा मुझे कोई रास्ता दिखाई नहीं पडता। क्रोमोसोम किसी-न-किसी रूप में हमारे हस्तांतरणीय लक्षणो से अवश्य सम्बद्ध है।"

वाटेसन की इस स्पष्ट स्वीकारोक्ति से ससार भर मे हलचल मच गई। इसका परिणाम भी तुरन्त देखने को मिला। यूरोप भर से ड्रोसोफिला के म्यूटेंट भेजने की माँग आने लगी। इंगलैड और जापान मे ड्रोसोफिला का अनुसधान शुरू हो गया। जर्मनी के युवक आनुवंशिकी विज्ञानी न्यूयार्क की इस ड्रोसोफिला प्रयोगशाला में अध्ययन के लिए आये और घर लौटने पर इस कार्य को आगे बढ़ाया। सोवियत रूस को भी पर्याप्त संख्या मे ये मक्खियाँ भेजी गई और उसके वैज्ञानिको ने अमरीकी अनुसंधानकर्ताओं से निरन्तर सम्पर्क रखा तथा उसके अपने ड्रोसोफिला अनुसंधानकर्ताओं की संख्या तेजी से बढ़ती गई। जब फरवरी, १९३४ मे मास्को मे आनुवशिकी सस्था के नए कक्षो का उद्घाटन हुआ तो उस समय सोवियत रूस में ड्रोसोफिला के अनुसधानकर्ताओं की सख्या संसार भर मे दूसरे स्थान पर थी।

ड्रोसोफिला सम्बन्धी अनुसंधान ने ही मोरगन के सिद्धान्त को, डारविन के सिद्धांत के बाद का सर्वाधिक महत्वपूण जीवविज्ञान सम्बन्धी अनुसधान सिद्ध नहीं किया। जिस समय कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे पहली ड्रोसोफिला मक्खियों का प्रजनन किया जा रहा था, रोलिन्स ए० इमरसन, नेब्रास्का विश्वविद्यालय में बागवानी की शिक्षा दे रहे थे। अपने विद्यार्थियों को कोई ऐसा जीवी उपलब्ध कराने के लिए जिससे वे मेण्डेल के नियमों का अनुसंधान कर सकें, उन्होंने कार्न (मक्का) को चुना। उन्होने सफेद राइस पोप कार्न और स्वीट कार्न को संकर किया और इस अन्त.पराग सेचित अनाज के एक बुशल को अपने विद्यार्थियों में बाँटा, जिससे वे मेण्डेल के अनुपात की सत्यता का पता लगा सकें। जब इन प्रयोगों के परिणाम उपलब्ध हुए तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जिस तीन और एक के अनुपात की आशा थी, वह उपलब्ध नही हुआ। उन्होंने इसका कारण जानना चाहा और जल्दी ही उन्हें इसका उत्तर मिला।

नियमों को लागू करना किसी हद तक उचित नहीं है। उनकी राय थी कि माता-पिता से मिलने वाले अनेकों लक्षणों का विकास, उनमें सुधार करने वाले तत्वों और वाह्य वातावरण, दोनों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए मनुष्य की सहवर्तिता के किसी मामले का निश्चित ज्ञान नहीं है।

हमारी स्पीशीज़ अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन हैं और हमारी कोशिकाओं मे अडतालीस या सम्भवत: छियालीस क्रोमोसोम है, जिनमें दस हजार से लेकर एक लाख विभिन्न जीन है। कल्पना की दुनिया के बाहर मानव-आनुवशिकी के सम्बन्ध मे बहुत कम काम हो पाया है। जिसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य को गिनिपिग या ड्रोसोफिला मक्खी की तरह प्रयोगशाला मे परीक्षण करने मे प्रयुक्त नही किया जा सकता। विज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र मे इतनी अंधाधुन्ध और विचित्र बातें प्रकाशित नहीं हुई हैं, जितनी कि किसी समूह की शुद्धि या नवीकरण मे सुजनन-तत्त्व की संभावनाओं के विषय मे कही गई है।

सृजनात्मक और नियंत्रित क्रम-विकास की जटिल सम्भावनाओं के बारे में १६२६ में मोरगन की प्रयोगशाला मे, आरम्भिक दिनों में कार्य करने वाले, एक अनुसंधानकर्ता ने वर्लिन में, छठे अन्तर्राष्ट्रीय आनुवशिकी सम्मेलन मे घोषणा की। इस अनुसंधान मे भी ड्रोसोफिला मक्खी का ही प्रयोग किया गया। हरमन जोसेफ मूलर ने घोषणा की कि उन्होंने ड्रोसोफिला के जर्मप्लाज्म या जनित्र द्रव्य से वर्षो तक अनुसधान किए हैं और उन्हें उत्साहवर्धक परिणाम मिले है।

मूलर का विचार था कि सम्भवत: आनुवंशिकता की क्रिया के ज्ञान मे मनुष्य, क्रमविकास के लिए आवश्यक अत्यधिक समय को कम कर सकेगा। १६१८ में, जबकि वे टेक्सास-विश्वविद्यालय में थे, उन्होंने सबसे पहले स्वत: या स्वजात म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) की सामान्य दर का पता लगाने के प्रयोग किए। इसके बाद उन्होने बाहरी प्रभावों के द्वारा म्यूटेशन की गति में परिवर्तन का पता लगाया। ताप और एक्स किरणों की सहायता से म्यूटेशन क्रिया को तेज किया जा सकता है और मूलर ने ड्रोसोफिला के संसेचित अंडों के क्रोमोसोमों पर एक्स किरणें डालीं।

आठ वर्ष तक मूलर एकाकी जीवन व्यतीत करते रहे। अन्त मे जब उन्होंने अपनी सब उपलब्ध जानकारी की जांच कर ली और अपने परिणामों के प्रति आश्वस्त हो गए, तो उन्होंने अपनी युगप्रवर्तक घोषणा की। उन्होंने ड्रोसोफिला के क्रोमोसोमों में उपस्थित जीनों को स्थानच्युत किया था। उन्हें अलग-

अलग करके फिर उन्हे क्रमवार लगाया था। उन्होने म्यूटेशन की गति को डेढ सौ गुना अधिक तेज किया था और उन्होंने कृत्रिम तरीको से क्रम-विकास की क्रिया को तेज किया था। उन्होंने वस्तुत. स्पीशीज का तत्त्वातरण किया था और मक्खियो पर एक्स किरणें डाल कर नई स्पीशीज उत्पन्न की थी। मूलर ने जर्मप्लाज्म या जनित्र द्रव्य के भीतर एक्स किरण की ट्यूब डालकर विकिरण की सहायता से इसे विशृंखलित किया था। नियंत्रित म्यूटेशन के इस प्रदर्शन ने यह सिद्ध कर दिया कि अब हमे प्रकृति की धीमी गति पर इस सम्बन्ध मे निर्भर नहीं रहना होगा।

मूलर ने जो रास्ता दिखाया, अन्य लोग भी उस पर चले। इससे एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुसंधान हुए। नर ड्रोसोफिला, अक्षत और गर्भिणी ड्रोसोफिला मादाओं तथा ससेचित अडो, सब पर एक्स किरणें डाली गयी और परिवर्तनों का अध्ययन किया गया। एक रूसी अनुसंधानकर्ता ने ड्रोसोफिला की जनन-कोशिका पर एक्स किरणें डालीं और पहली पीढ़ी मे ही, म्यूटेशन उत्पन्न करने मे सफल हुए। उन्होने इसके बाद पहली पीढ़ी की इस सन्तति पर एक्स किरणें डाली और उक्त परिवर्तन को उलट दिया, जिसके फलस्वरूप मक्खियो की तीसरी पीढ़ी पहले जैसी ही सामान्य हुई, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि सभवत म्यूटेशन प्रतिवर्ती होते है। जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के वैज्ञानिको ने ग्रेप फ्रूट के बीजों पर एक्स किरणें डालीं और छह सप्ताह मे ही इसमे फूल उत्पन्न किए जबकि सामान्य रीति से इस वृक्ष पर फूल आने में छह वर्ष लगते है। अन्य अनुसधानकर्ताओ ने टमाटर के पौधो पर रेडियम का विकिरण और एक्स किरणें डाली और टमाटर की एक ऐसी नई किस्म उपलब्ध की, जिसे किसी भी स्थिति में सामान्य टमाटर से संकर नही किया जा सकता। इन और बाद के सैकड़ों परीक्षणों के परिणामों के आधार पर उच्च कोटि के जीवियों-सम्बन्धी अनुसंधानों की शुरुआत हो सकती है। पर यह भविष्यवाणी करना बहुत कठिन है कि भविष्य में किस दिशा में अनुसधान होंगे, क्योंकि इस क्षेत्र के वैज्ञानिक अनुसधान ऐसे है, जिनके बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

मोरगन ने १६०६ मे आनुवंशिकता की इस समस्या की ओर ध्यान दिया और जब हम उसके बाद की अर्धशताब्दी के कार्य का सर्वेक्षण करते है, तो हमें पता चलता है कि विज्ञान की अनेकों शाखाओं मे आनुवंशिकी के नये सिद्धान्तों और जानकारियों का उपयोग किया जा रहा है। संसार भर की प्रयोगशालाओं मे आनुवंशिकीविदों ने जीन-सिद्धान्त की सत्यता की उद्घोषणा की है, जिनका अस्तित्व परमाणु के अस्तित्व की तरह ही पूरी तरह से प्रमाणित किया जा

चुका है। प्रकृति ने क्रोमोसोमों के सूक्ष्म तन्तुओं के सिरों पर जो मनके उत्पन्न किए हैं, वे जीन है। और इन पर ही सब जीवियो, जिनमें मनुष्य भी शामिल है, का भाग्य निर्भर रहता है। यदि भाग्य हमारी किस्मत का ताना-बाना बुन रहा है, तो ये तन्तु, जीनों के मनकों से भरे क्रोमोसोम है, जिनके द्वारा यह ताना-बाना बुना जा रहा है।

स्टरटीवांट ने सबसे पहले १६२५ मे यह प्रदर्शित किया कि जीनो का विकास उनके पड़ोसियो से प्रभावित होता है। प्रत्येक जीन को एक स्वतन्त्र यूनिट समझा जाता है और सामान्यतः यदि इसमे परिवर्तन होता है, या यह अपने स्थान से हटता है, तो इसका प्रभाव जीवी के किसी विशेष लक्षण पर पड़ता है। पर यह कहना भी सत्य है कि प्रत्येक लक्षण सब जीनो के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न होता है। ब्रिजेज ने आनुवंशिकी-सन्तुलन की इस क्रिया की ओर विशेष ध्यान दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रत्येक विकसित जीवी का प्रत्येक लक्षण सब जीनो की सम्मिलित क्रिया से उत्पन्न होता है। यह जीन एक साथ मिलकर किस प्रकार काम करती है, इसका अब तक पता नही चला है। पर हम यह जानते है कि प्रत्येक जीन सक्रिय उत्पादनो के विसरण का केन्द्र होता है।

प्रोफेसर मोरगन १६२८ मे केलिफोर्निया इस्टिट्यूट आफ टेकनालॉजी की नई जीव-विज्ञान शाखा के अध्यक्ष बने। स्टरटीवाट, कालविन, ब्रिजेज और जैक शुल्टज को भी इस शाखा मे नियुक्त किया गया और ड्रोसोफिला-सम्बन्धी अनुसधान पूरी तेजी से चल पडा।

२२ दिसम्बर, १६३३ को ए न्यू मैथड फार दि स्टडी आफ क्रोमोसोम रि-अरेंजमेंट्स एण्ड दि प्लाटिंग आफ क्रोमोसोम मैप्स शीर्षक लेख प्रकाशित होने तक क्रोमोसोमों की रचना का विवरण बहुत कुछ कल्पना पर ही आधारित था। इस महत्त्वपूर्ण लेख के लेखक टैक्सास-विश्वविद्यालय के थियोपिल्स एस० पेण्टर थे और मोरगन ने इस लेख को आनुवंशिकी के गौरवपूर्ण लेखों मे बताया। उस समय तक ड्रोसोफिला सम्बन्धी सब कार्य अडो की कोशिकाओ के द्वारा ही किया गया था। कुछ समय से यह जानकारी थी कि डिप्टेरा कीटो की बडी लारग्रन्थि के क्रोमोसोम की पट्टीदार रचना होती है। यह भी सिद्ध हो चुका था कि विकसित ड्रोसोफिला लार्वा की लारग्रन्थि की कोशिकाओं के क्रोमोसोम, इस मक्खी की अड-कोशिकाओ के क्रोमोसोमों से सत्तर गुना बड़े होते हैं।

पेंटर ने इन बड़े क्रोमोसोमों की रचना की कुछ जानकारी उपलब्ध करने के लिए इन्हें एसिटोकारमीन रंग से रँगने का तरीका अपनाया। इस विधि से वे

एक हजार से अधिक छल्लेदार बैंडों का पता लगाने में सफल हुए। उन्होंने इन बैंडों के क्रम और ब्रीजेज के नक्शों के क्रम की समानता भी दर्शायी। जैसे ही पेण्टर ने इस नए और उत्साहवर्धक अध्याय का समारम्भ किया, कालविन ब्रिजेज प्रयोगों के तरीके में आगे संशोधन और परिवर्तन करने के लिए उनके साथ काम करने लगे, जिससे अधिक व्यापक अध्ययन किया जा सके।

ब्रिजेज इन बड़ी लारग्रन्थियों पर काम करते रहे। उन्होंने अपने क्रोमोसोम नक्शों में परिवर्तन-परिवर्धन के लिए इनकी कमियों और दो बार एक ही बात की आवृत्ति होने का अध्ययन किया। जैसे-जैसे अधिक जानकारी मिलती जाती थी, यह कार्य उतना ही अधिक कठिन और आकर्षक बनता जा रहा था। १९३६ की गर्मियों में उनके पुत्र, फिलिप एम० ब्रिजेज ने अपने पिता की सहायता करना शुरू की। दो वर्ष बाद पिता ब्रिजेज ने **रिवाइज्ड मैप आफ दि सेलिवरी ग्लैंड एक्स क्रोमोसोम** का प्रकाशन किया। पर मेधावी, सीधे-सादे, तथा अपने कार्य को बिना किसी दिखावे के करने वाले युवक कालविन ब्रिजेज अपना अध्ययन पूरा न कर सके। उन्होंने इतनी कड़ी मेहनत से यह काम किया, कि २७ दिसम्बर, १९३८ को ३९ वर्ष की उम्र में हृदय-गति रुक जाने से लासएंजेल्स में उनकी मृत्यु हो गई।

मोरगन ने हमें यह बताने में जरा भी हिचकिचाहट महसूस नहीं की कि जब हम प्रकृति सम्बन्धी सब समस्याओं को अन्तिम रूप से सुलझाने की बात कहते हैं, तो हम कल्पना के संसार में विचरण करते हैं। वे स्वयं एक ऐसी ही समस्या को पूरी तरह से सुलझाने के अत्यन्त समीप पहुँच गए थे और उन्होंने जटिल उपकरणों की सहायता से नहीं, बल्कि अपने कुशल हाथों, कल्पनाशील मस्तिष्क, विज्ञान के व्यापक और गहरे ज्ञान तथा जटिल से जटिल समस्या को सुलझाने की लगन से यह कार्य किया। मोरगन के अनुसंधान-कार्यों से हम एकाधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं के हल के अत्यन्त समीप पहुँचे।

मोरगन ने क्रम-विकास के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया और अन्य सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध की। डारविन का कहना था कि वातावरण के परिवर्तन और अस्तित्व बनाए रखने के प्रकृति के महान् संघर्ष के दौरान जो लक्षण और गुण विरासत में मिलते हैं, उनके आधार पर क्रम-विकास की क्रिया को समझाया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हानिकारक परिवर्तन समाप्त हो गए, पर जो परिवर्तन स्पीशीज के अस्तित्व के लिए लाभप्रद थे, उनका विकास होता गया। आज हम यह बात जानते हैं कि प्राकृतिक वरण, जो कि अपरिवर्तनशील तर्क से सम्बन्धित है, क्रम-विकास की सृजनात्मक शक्ति नहीं है, यद्यपि इसके द्वारा प्रकृति की अनेकों परीक्षाओं के प्रभाव को समझाया जा

सकता है अर्थात् वे स्पीशीज समाप्त हो गयीं, जो क्रूर वातावरण के अनुरूप स्वयं को न ढाल सकीं। मोरगन द्वारा म्यूटेशन की सृजनात्मक शक्ति के प्रदर्शन के बाद हम प्राकृतिक वरण और अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष के विषय को अब उतना अधिक महत्त्व नही देते।

आज जबकि नित नई जानकारी मिल रही है, यह निष्कर्ष निकालना उचित लगता है कि निरन्तर अधिक जटिल होती विभिन्न स्पीशीज का विकास किसी प्रकार की चुनींदा क्रिया द्वारा हुआ। यह क्रिया म्यूटेशन द्वारा उपलब्ध जीवियो पर हुई। क्रम-विकास के प्रत्येक वैज्ञानिक सिद्धान्त का आधार केवल आनुवंशिकता की क्रिया ही हो सकती है। मोरगन का विश्वास था कि हम म्यूटेशन सिद्धान्त को उसी वैज्ञानिक प्रयोगात्मक तरीके से स्वीकार और स्थापित कर सकते हैं, जिसके द्वारा रासायनिक शास्त्र और भौतिकी की महान् प्रगति हुई। अग्रेज वैज्ञानिक लेंसलाट होगबेन ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि "जब अब से दो शताब्दी बाद क्रम-विकास के सिद्धान्त का इतिहास लिखा जाएगा, तो उसमें इस चार्ल्स डारविन के नाम से कहीं अधिक बार टामस हंट मोरगन के नाम का उल्लेख होगा।"

आनुवंशिकी-सम्बन्धी जानकारी से अच्छी नस्ल के जानवरो के प्रजनन में सहायता मिली है। इससे ऐसे ढोर पैदा किए जा सके, जिनसे अधिक मांस मिलता है, ऐसी गायें तैयार हुईं जो अधिक दूध देती है और ऐसी मुर्गियाँ मिलीं जो पहली मुर्गियों की बनिस्बत तिगुने अडे देती है। पौधों के प्रजनन मे भी लूथर बरबैंक जैसे व्यक्तियो के पुराने तरीको के स्थान पर अधिक सही और आसानी से नियत्रित तरीके अपनाये गए। जार्ज एच० शुल ने ऐसी सकर मक्का उत्पन्न की, जिसने पूरे देश में सकर मक्का उत्पन्न करने के व्यापक कार्यक्रम को गति दी। इसके फलस्वरूप अमरीकी मक्का की फसल करोड़ों डालर ज्यादा हुई। इसके अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण पौधे, जिनमे गेहूँ की ऐसी किस्म भी है जिस पर रतुवा नही लगता, सर्दी का प्रभाव नही होता और जिसे टिड्डे भी नही खाते, पैदा की जा सकती है। एक नए किस्म का तम्बाकू भी पैदा किया गया, जिसे सिगार-निर्माता विशेष रूप से इस्तेमाल करते हैं। इतना ही नही, बन्दगोभी की ऐसी किस्म तैयार की गई जिसमें गन्ध नही होती।

जीन सिद्धान्त ने अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं, जिनमें जड बुद्धिता, मस्तिष्क की कमजोरी और कई किस्म के पागलपन की चिकित्सा की समस्याएँ है, का हल सम्भव कर दिया है। चिकित्सकों से अक्सर ऐसे मामलों मे सलाह ली जाती है, जहाँ किसी आनुवशिक खामी के कारण विवाह को उचित नहीं समझा जाता। वकीलों ने भी रक्त-समूहों की आनुवंशिकता के ज्ञान को

सकें।" वुड्स होल, मैसाचुसेट्स में १९०३ में पहली बार उन्होंने जिस समस्या का अध्ययन शुरू किया था, अब फिर उस पर प्रतिदिन कार्य करना शुरू किया। यह समस्या ड्रोसोफिला की आनुवंशिकी से सीधी सम्बन्धित नहीं थी। इसका सम्बन्ध संकर-संसेचन और स्वयं-ससेचन तथा उस आनुवंशिक परिस्थिति से था, जिससे व्यक्तिगत भिन्नता स्पष्ट होती है। मोरगन इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने में लगे थे कि सामान्य उभयलिंगी समुद्री स्क्विर्ट के शुक्राणु प्रायः उसी जीव के अंडो को कभी संसेचित नही करते, पर अन्य सब समुद्री स्क्विर्टों के अंडों को ससेचित करते है। हल्के अम्लो के उपयोग और अन्य सामान्य तरीको से मोरगन एक समुद्री स्क्विर्ट के अडों को उसके ही शुक्राणु से ससेचित करने में सफल हुए। इससे जो संतति उत्पन्न हुई, उसे पालकर बड़ा किया गया और इस प्रकार एक ही स्क्विर्ट से आगे अध्ययन के लिए अनेको पीढियाँ उत्पन्न की गयी।

हजारों प्रयोगों के बाद मोरगन ने स्वीकार किया कि वे समस्या को सुलझाने मे सफल नही हुए हैं, पर उन्हे "एक विशेष मन स्थिति मिली है, चाहे समस्या का हल न मिला हो।" और उनका कार्य १९४५ के उस दिन तक अविराम चलता रहा, जब ८०वें वर्ष मे आनुवंशिकी के इस महान् वृद्ध पुरुष की मृत्यु हो गई।

अध्याय २

मेक्लीन इवान्स

(१८८२-   )

हर   की दो नए क्षेत्रों में प्रवर्ति

में आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) ही

वैज्ञानिकों ने विकास का मार्ग प्रशस्त

अमरीकी   शाखा, अन्तःस्रावी विज्ञान, विशेषकर

इस नई शताब्दी के   में संयुक्त राज्य के वैज्ञानिकों ने बहुमूल्य

मात्र क्षेत्र न था, जिसमें अ   का श्रेय प्राप्त हुआ। अमरीकी विद्यार्थी

विज्ञान की एक अत्यन्त   जाते थे किन्तु फिर यह भी हुआ कि संसार

ग्रन्थियों के अन्तःस्राव के   तत्त्व को सीधे रुधिर धारा में पहुँचाने वाली

किया और उन्हें मार्ग-दर्श -समझने के लिये हमारे पास आने लगे।

विज्ञान के अध्ययन हेतु यू   -ग्रन्थि, अग्न्याशय, परावटु, अण्डाशय

के लोग अपने रासायनिक लिए ये लोग अमरीका आए।

ग्रन्थियों की क्रिया ज

गल-ग्रन्थि, पीयूष-ग्रन्थि,   लोग धीरे-धीरे 'थियोफ्रास्टस पारासेलसस' के

अण्ड-ग्रन्थि के अध्ययन के कि शरीर एक बहुत ही बड़ा पेचीदा रसायन कार

के इस बड़े क्रान्तिकारी ने कहा: "शरीर के

बहुत लम्बे अरसे   य और एक अदृश्य वैद्य विद्यमान है जो समयानुसार

सिद्धान्त को मान रहे थे   दवाएँ तैयार करता है। आवश्यकतानुसार विशेष

खाना है। औषधि-   मात्रा में देता रहता है।" उन्होंने रसायनशास्त्र की

एक बड़ा अदृश्य औ   ी थी, और उसी मार्ग द्वारा हम औषधिविज्ञान

शरीर की रक्षा के   के प्रयोग कर सके। अब फिर वैज्ञानिकों ने

प्रकार की दवायें निश्चित   है कि व्यक्ति के कोषाणुओं की भौतिकी

ओर इंगित कर राह बता   विविध शारीरिक रसों, ऊतकों तथा अंगों

रसायनशास्त्र के सिद्धान्तों को सरलता से स्पष्ट कर देगा।

अनुभव करना शुरू कर

रसायन का ज्ञान, इनकी

क्रियाओं तथा कार्यविधिय

जॉन जेकॉब आबेल पहले व्यक्ति थे जो हॉरमोन का शुद्ध तत्त्व प्राप्त करने में सफल हुए। मई १८९७ में जान्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में इन्होंने भेड़ की अधिवृक्क-ग्रन्थि के मध्य भाग से एपिनेफ्रिन के मोनोबेन्जिल तत्त्व का सल्फेट निकालने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। क्लिफ्टन, न्यू जर्सी के एक जापानी रसायनशास्त्री जोकिची टाकामिने ने कुछ समय बाद इसी हॉरमोन का शुद्ध स्फटिक रूप बना लिया और इसे ये "आड्रेनालीन" के नाम से बाजारों में बेचने लगे। पाँच वर्ष बाद इसे संश्लिष्ट कर दिया गया। आड्रेनालीन ऐसी औषधि है जो प्राण-दान करती है और कमजोर हृदयों की गति को बनाये रखने में बड़ी सहायता करती है। विषम परिस्थितियों में जब किसी आकस्मिक चोट व सदमे से हृदय की गति रुकने लगती है, तब हृदय को बल प्रदान कर यह औषधि प्राण-रक्षा करने में समर्थ होती है। रुधिर-वाहिका को संकुचित कर यह औषधि स्थानिक रुधिर-स्राव, अत्यधिक रुधिर-स्राव तथा श्वास व दमे के आवेग को रोक देती है।

इधर जब आबेल 'आड्रेनालीन' के अपने अध्ययन में संलग्न थे, तभी एक अन्य अन्तःस्राव के अन्वेषण की घोषणा हुई। पेट की पाचनशक्ति को बल देने के निमित्त अग्न्याशय-रस किस प्रक्रिया द्वारा पेट में पहुँचता है, इस रहस्य का पता लगाने के प्रयत्नों के फलस्वरूप शरीर-शास्त्रियों ने इस नये अन्तःस्राव के रहस्य का उद्घाटन किया। अर्नेस्ट स्टार्लिंग तथा विलियम बोलिस ने लन्दन-विश्वविद्यालय में १९०२ ई० में कुत्तों पर किये गये अपने परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध किया कि इस प्रक्रिया का एक कारण रासायनिक प्रतिक्षेप है। छोटी आँत के प्रारम्भिक भाग में लगे कोशाणु एक रस बनाते हैं जो बिना किसी वाहिका के सीधे रुधिर-धारा में मिल जाता है और यह रस जिसे 'सेक्रेटिन' कहते हैं, रुधिर द्वारा अग्न्याशय में पहुँचाया जाता है और यह अग्न्याशय को भोजन-नालिका में अग्न्याशय-रस पहुँचाने के लिए बाध्य करता है। यह हॉरमोन भी 'आड्रेनालीन' के ही प्रकार का आवश्यक रासायनिक मिश्रण है।

१९१४ के क्रिसमस के दिन एडवर्ड केण्डल नामक अमरीकी वैज्ञानिक ने 'थाइरोक्सिन' नामक एक नये हॉरमोन के खोज की घोषणा की। किसी भी एक समय इस स्फटिक की चुटकी भर मात्रा ही शरीर में रहती है, किन्तु फिर भी इस किंचित् स्फटिक पर ही जीवन और मरण, स्वाभाविक मन स्थिति तथा पागलपन अवलम्बित है। १८५० में साल्जबर्ग (आस्ट्रिया) के बड़ी सख्या में क्रैटिन लोगों की जाँच से यह सम्भावना प्रतीत हुई कि इनकी इस दयनीय अवस्था का कारण या तो गल-ग्रन्थि का दूषित होना या गल-ग्रन्थि का नितान्त अभाव है। क्रैटिन लोगों की शरीर-रचना बिगड़ी हुई है, तोंद निकली हुई, बिगड़ी

हुई आँखें, निपट-निराश असहाय लोग है जो हर प्रकार की सहायता के बावजूद जानवरों की तरह जीवन-यापन कर रहे है।

इनकी गल-ग्रन्थियो मे से उस सक्रिय रासायनिक तत्त्व के निकालने के कितने ही प्रयत्न किये गये। अन्त मे कई चातुरीपूर्ण प्रक्रियाओं द्वारा केण्डेल ने थाइरोक्सिन को पकड ही निकाला। थाइरोक्सिन की रचना का केण्डेल ने पहले दोषपूर्ण विवरण दिया था। पर इसकी वास्तविक रचना और तत्त्व को बाद में निर्धारित कर दिया गया। १९२७ मे प्रयोगशाला में इसको संश्लिष्ट रूप मे ५ प्रतिशत आयोडीन के साथ रगहीन सुई के आकार में प्रस्तुत किया गया। संश्लिष्ट थाइरोक्सिन से क्रेटिन लोगो को स्वास्थ्य प्रदान किया जा सका और पहली बार क्रेटिनो के रोगग्रस्त अवयवो, हीन-गलग्रन्थिता तथा अत्यवटुता की चिकित्सा सम्भव हुई।

और फिर इसके बाद फ्रेड्रिक बैंन्टिग की 'इन्सुलिन' आयी और इससे क्यूरी तथा पास्तर की चामत्कारिक सफलता की तरह ही समस्त संसार चकित-विस्मित हुआ। विगत तीन शताब्दियो से मधुमेह का कारण अग्न्याशय-ग्रन्थि को ही माना जाता रहा है। मधुमेह से ग्रस्त रोगियो की इसी ग्रन्थि के रस से चिकित्सा की जाती रही, पर कोई असर ही नही होता था। एक दिन टोरण्टो विश्वविद्यालय मे अपने एक भाषण की तैयारी करते समय बैंन्टिग को एक नये सुराग का पता लगा। उन्होने कही पढा कि मिनेसोटा-विश्वविद्यालय के डा० मोजेज़ बैरन ने रिपोर्ट दी है कि अग्न्याशय ग्रन्थियो के बांध देने से उन कोपाणुओ की ही मृत्यु हो जाती है जो ट्रिप्सिन नामक द्रव्य का सृजन करते हैं। लेगरहेन्स के द्वीपो की क्रिया की अधिकता को यही ट्रिप्सिन नामक द्रव्य समाप्त करता है; और यही कारण था जिससे अग्न्याशय के द्रव्य से उपचार करने वाले चिकित्सकों को पहले सफलता प्राप्त नही होती थी। बैंन्टिग के शोध के पूर्व ग्रन्थियों को अलग नहीं किया जाता था, और इस कारण ट्रिप्सिन, अग्न्याशय में एकत्रित इन्सुलिन को समाप्त कर देता था।

बैंन्टिग ने तर्क किया कि अग्न्याशय को अलग करने के पूर्व, इससे लगी हुई वाहिका को बाँध देना चाहिए जिससे ट्रिप्सिन उन कोपाणुओ को समाप्त न कर सके जो मधुमेह को रोकने वाले द्रव्य की उत्पत्ति करते है। वे मधुमेह के विशेषज्ञ प्रोफेसर जे० आर० मैक्लिओड के पास गए और उन्होंने प्रयोगशाला की सुविधाएँ, आठ सप्ताह के लिए एक सहकारी, तथा परीक्षण के लिए दस कुत्तो की माँग की। इनकी इच्छानुसार व्यवस्था भी कर दी गयी।

बैंन्टिग ने ऐसे कुत्तों के अग्न्याशय का सत्त्व तैयार किया जिनकी अग्न्याशय-वाहिनी को बाँध दिया गया था। १९२१ की सत्ताइस जुलाई के प्रात.काल

उन्होंने उस सत्त्व को ऐसे कुत्तों की ग्रीवा-शिरा में सुई लगाकर डाल दिया, जिनके अग्न्याशय को निकालकर उन्हें मधुमेह का रोगी बना दिया गया था। मैक्लिओड ने रुधिर-शर्करा के परीक्षण के लिए चार्ल्स बेस्ट को नियुक्त किया था और ज्योंही प्रयोगशाला के उत्कण्ठित वातावरण में रुधिर-शर्करा के निश्चित रूप से कम हो जाने का समाचार फैला, बैंन्टिंग ने समझ लिया कि मधुमेह से पीडित कुत्ते की जान बचा ली गयी। छह मास के उपरान्त अग्न्याशय का शुद्ध, परिमार्जित सत्त्व पहली बार मनुष्य पर प्रयुक्त किया गया। टोरण्टो जनरल अस्पताल में बेहोशी में पड़े एक चौदह वर्षीय बालक पर इस सत्त्व का प्रयोग हुआ। मधुमेह का रोगी जब बेहोशी में आने लगता है, तो उसकी मृत्यु अत्यधिक निकट मान ली जाती है। इस जादुई सत्त्व के उपचार से इस रोगी बालक को मृत्यु के मुख से निकाल लिया गया। आज इन्सुलीन के लेने वाले लाखों व्यक्ति इस रसायन एवं औषधि के चमत्कार के साक्षी हैं। इस बडी खोज और असाधारण सफलता के लिए बैंन्टिंग को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया और कैनेडा की सरकार ने एक बड़ी राशि ही उनको भेंट नहीं की, अपितु कालान्तर में उन्हें 'सर' की उपाधि से विभूषित भी किया।

मधुमेह के रोगी को इन्सुलीन का इन्जेक्शन लगाकर हम उसकी अवस्था में सुधार अवश्य लाते हैं किन्तु रोगमुक्त नहीं करते। इन्सुलीन के बिना खायी गयी शर्करा शरीर-पोषण के किसी काम नहीं आती। शर्करा एकत्रित होती रहती है और फिर मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है। मधुमेह का रोगी जिसका अग्न्याशय पर्याप्त इन्सुलीन उत्पन्न नहीं करता, वह शक्ति के इस बडे स्रोत से वंचित हो जाता है और फिर उसे कृत्रिम उपायो से इन्सुलीन लेना पडता है। जब तक औषधि-विज्ञान ऐसा कोई उपाय नहीं ढूँढ़ निकालता जिससे अग्न्याशय की निर्बलता और निष्क्रियता को दूर किया जा सके, तब तक मधुमेह से ग्रस्त रोगियो को इन्सुलीन के इंजेक्शन लगातार लगाते रहने होंगे, क्योकि इन्सुलीन मुख द्वारा नहीं ली जा सकती। इन्सुलीन मुख द्वारा ग्रहण करने मे पाचन-नलिका के खमीर से यह बिखर जाती है और बेकार साबित होती है।

पश्चिम के सेन जोकिन वैली के शल्यक्रिया के विशेषज्ञ डाक्टर उन अनगिनत लोगों में से एक है इन्सुलीन ने जिनकी मधुमेह के भयानक रोग से प्राण-रक्षा की। मोडेस्टो, कैलिफोर्निया के डाक्टर सी० डब्ल्यू० इवान्स प्रारम्भिक दिनों मे रेलवे के डाक्टर थे और उन्हें कई बार रेल-दुर्घटनाओं के इन जख्मी लोगों के अंगो की शल्यक्रिया करनी पड़ती थी। रेल-दुर्घटनाओ के इन जख्मी लोगो की प्राण-रक्षा के निमित्त अपनी यात्राओं मे अधिकतर अपने पुत्र हरबर्ट को

साथ ले जाते थे क्योंकि उनकी यह इच्छा थी कि उनका पुत्र एक दिन शल्य-क्रिया का कुशल डाक्टर बने।

अवस्था प्राप्त कर हरबर्ट कैलीफोर्निया-विश्वविद्यालय में दाखिल हुए और वैज्ञानिक शोध के कार्य की ओर ही उनकी अधिक रुचि हुई। स्नातकोत्तर विद्या के लिए वे जॉन्स हॉपकिन्स में प्रविष्ट हुए, जो १८७६ से ही अमरीकी स्नातकोत्तर शिक्षा का एक विशेष केन्द्र बन गया था। अमरीका भर में यह पहला स्थान था जहाँ कई विषयों में स्नातकोत्तर विद्या की सुविधाएँ सुलभ थी। अमेरिका में वैज्ञानिक शोध के कार्य के लिए अब विद्यार्थियों को यूरोप जाकर बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की शरण लेनी आवश्यक नहीं थी, क्योंकि अपने देश ही में अब विशेष शोध-कार्य की सुविधाएँ तथा दक्ष वैज्ञानिकों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त था।

इवान्स ने विशिष्ट योग्यता प्राप्त करने की सम्भावनाओं की बात अपने गुरु जेक्स लोब से कही तो उन्होंने समझाया कि किसी नियत क्षेत्र में योग्यता प्राप्त करने की बात मत सोचो, बल्कि नये क्षेत्रों में नये अनुसंधान करने की कामना रखो और सम्बद्ध अन्य क्षेत्रों में भी आवश्यकता पड़ने पर झिझको मत, किन्तु साहस एवं विश्वासपूर्वक उनमें भी प्रवेश करो। इवान्स ने यह सलाह मान ली। विज्ञान की सीमाएँ शीघ्रता से टूट रही थी, जिज्ञासु वैज्ञानिक लापरवाही से एक-दूसरे के क्षेत्रों का अतिक्रमण करने लगे थे और अब किसी सुनिश्चित निर्धारित क्षेत्र में शोध-कार्य को सीमित रखना कठिन हो गया था। इवान्स ने शरीर-रचना-विज्ञान से आरम्भ किया किन्तु धीरे-धीरे उसकी रुचि भ्रूणविज्ञान में हो गयी। फिर ऊतकों की काट-छाँट करते-करते उनका मन ऊब गया और शरीर के मनोरंजक नाटक, चामत्कारिक क्रिया के प्रत्येक पहलू को जानने की इच्छा के साथ-साथ वे जीवविज्ञान की गतिशीलता और विशेषकर ग्रन्थियों के कार्य में आकर फँस गये।

जब उधर बैंटिंग मनुष्यों की प्राणरक्षा के निमित्त कुत्तों की हत्या कर रहे थे, इधर इवान्स रहस्यमय पीयूष-ग्रन्थि के क्षेत्र में एक चमत्कारी अन्वेषण में सफलता प्राप्त कर रहे थे। पीयूष-ग्रन्थि दिमाग के ठीक नीचे हड्डी में बड़े यत्नपूर्वक रखी हुई ग्रन्थि है और शरीर का यह एक बड़े महत्त्व का अवयव है। स्पन्दनशील शरीर का यह ऐसा अवयव है जहाँ सरलता से पहुँचना बड़ा कठिन है। कुछ वर्षों से यह धारणा बन रही थी कि शारीरिक विकास और इस ग्रन्थि के कार्य में परस्पर सम्बन्ध अवश्य है।

इस बात की खोज में कि क्या पीयूष-ग्रन्थि उस हॉरमोन को तैयार करती है जिससे शरीर बढ़ता है, इवान्स ने कसाइयों के यहाँ जा-जाकर गाय-बैलों

की पीयूषग्रन्थि का सत्त्व तैयार किया। १९२० ई० में उन्होने पीयूषग्रन्थि के सत्त्व को बड़ी मात्रा में मुख द्वारा पिला कर बहुत से प्रयत्न किये, पर असफल ही रहे। फिर उन्होंने चूहों के बच्चों पर इस सत्त्व के इन्जेक्शन लगाये। कुछ ही महीनों मे ये चूहे के बच्चे बड़े विशालकाय हो गये। केवल मोटे हो गये हों, यह बात नही, परन्तु इनकी हड्डियाँ, दिल, कलेजे, गुर्दे, फेफड़े, आहार-नाल आदि सबों का आकार अत्यधिक बड़ा हो गया था। और जब इवान्स ने ये इन्जेक्शन लगाने बन्द कर दिये तो वे पुनः प्रकृतिस्थ हो गये और उनका विकास रुक गया। पीयूषग्रन्थि निकालने के कारण अविकसित छोटे-छोटे चूहों को जब इस सत्त्व का इन्जेक्शन दिया गया तो वे फिर अपने स्वाभाविक आकार के हो गये। १९२२ ई० में इवान्स और जोसेफ लोंग ने इस विकास-प्रेरक हॉरमोन के खोज की विज्ञप्ति 'एनाटोमिकल रेकार्ड' नामक पत्रिका मे निकाली।

यदि शरीर-विकास का यह चमत्कार चूहो में हो सकता है तो फिर मनुष्यों मे यह क्यो सम्भव नही ? और जब इवान्स ने इस सत्त्व को अधिक परि-मार्जित और शक्तिशाली बना लिया तो उन्होने इसका एक नौ-वर्षीय बालिका पर प्रयोग किया। इस बालिका का शारीरिक विकास लगभग चार वर्षों से रुक गया था। न्यूयॉर्क के डाक्टर एनजेलबाक ने इसका इस सत्त्व से उपचार किया और १९३१ ई० में लगभग आठ महीने में इस लड़की के ढाई इंच से अधिक बढ़ जाने की घोषणा की। दूसरे डाक्टरो ने भी इस उपचार-विधि का अनुकरण किया और उन्हे इसमे बड़ी सफलता मिली। पन्द्रह-वर्षीय एक बौना लड़का इक्कीस महीनो मे साढ़े आठ इंच अधिक बढ़ गया।

इस खोज के परिणामस्वरूप लोगो की कल्पनाएँ जाग्रत होने लगी और राक्षसो तथा बौनों की कल्पनाएँ की जाने लगी। कुछ लोगों ने अन्दाजा लगाया कि अब इन्जेक्शन द्वारा समूचा देश ही विशालकाय भूधराकार नाग-रिकों का बनाया जा सकता है। किन्तु इवान्स ने ऐसी कोई निर्मूल आशा और रोमाचकारी कल्पना नही की। उन्होने कहा : "लोग कहते है कि जापान के बादशाह मिकाडो अपनी सेना के जवानों की लम्बाई बढ़ाना चाहते है। विकासप्रेरक इस हॉरमोन से यह सम्भव अवश्य है, किन्तु मिकाडो भी इस उपचार के खर्च को उठा न पायेंगे।"

पीयूषग्रन्थि सभी ग्रन्थियों से अधिक पेचीदा साबित हुई। यह एक दर्जन से अधिक प्रकार के हॉरमोन उत्पन्न करती है और शरीर की अन्य सभी ग्रन्थियों की क्रियाओं का सन्तुलन भी करती है। इस ग्रन्थि को राजग्रन्थि माना गया है और आज भी यह विज्ञान की विषम पहेली है।

इवान्स ने यह भी देखा कि उनका बनाया तत्त्व जहाँ जन्तुओं की विकास-क्रिया को बढ़ाता है, वही यह उन चूहों की सेक्स, मैथुन क्रिया को प्रेरित करने में असमर्थ है। मादा चूहे में, जिसकी पीयूषग्रन्थियाँ निकाल दी गयी हों, सम्भोग करने पर अण्डाणुओं का स्राव नहीं होता किन्तु यदि पीयूषग्रन्थि सम्भोग क्रिया के केवल एक घण्टे पूर्व निकाली जाय तो अण्डाणु अवश्य पाये जाते हैं। शायद पीयूषग्रन्थि के आगे के खण्ड में इस दूसरे हॉरमोन का स्थान है, जो अण्डाणुओं की उत्पत्ति का कारक है।

अमरीकी चार्ल्स स्टोकार्ड तथा जॉर्ज पपानिकोलू ने १९१७ ई० में इस समस्या के निदान का तरीका निकाला। उन्होंने देखा कि मादा गिनी-पिग की योनि से अलग-अलग समयों पर लिये गये लेप को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर उस में भिन्न-भिन्न प्रकार के कोषाणु पाये जाते हैं। जन्तुओं में मैथुनक्रिया का काल उनके अण्डाणुओं के प्रस्राव के समय से मेल खाता है। जब मादा गिनी-पिग कामासक्त होती है तो उसके कोषाणु एक विशेष प्रकार के होते हैं तथा उनका रंग इओसिन की तरह चमकीला होता है; और जब वे कामातुर नहीं होती उस समय के कोषाणु दूसरे ही प्रकार के होते हैं। इस तरह योनि-गत लेप के परीक्षण द्वारा किसी भी जन्तु की मैथुन-क्रिया का पता लगाया जा सकता है। १९२२ ई० में इवान्स तथा जोसेफ लाग ने इस प्रक्रिया द्वारा चूहों की मैथुनक्रिया का समय-चक्र निर्धारित किया।

अगले वर्ष बर्कले, कैलिफोर्निया में इवान्स की प्रयोगशाला में फिलिप स्मिथ ने एक अत्यन्त कुशल प्रक्रिया द्वारा चूहों के गले में एक मामूली नश्तर लगाकर उनकी पीयूषग्रन्थि को सरलता से निकाल लेने की विधि खोज निकाली और इससे इस विषय पर अत्यधिक प्रकाश पड़ा। और फिर उन्होंने यह भी निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया कि इसी पीयूषग्रन्थि में कुछ ऐसी चीज है जो काम-भावना को उद्दीप्त करने की सामर्थ्य रखती है। उन्होंने ऐसे चूहे में, जिसकी पीयूषग्रन्थि निकाल दी गयी थी, दूसरे चूहे की पीयूषग्रन्थि लगा दी। इससे चूहे की मैथुनक्रिया जो समाप्त हो गयी थी, फिर पुनर्जीवित ही नहीं हो उठी, बल्कि अधिक सबल हो गयी।

स्मिथ का यह सौभाग्य ही था कि उन्होंने अपने परीक्षण चूहों पर किये, क्योंकि इसी ग्रन्थि-प्रतिरोपण की क्रिया जब सूअर, खरगोश, बिल्ली तथा कुत्ते पर की गयी तो कोई भी असर नहीं हुआ। किन्तु उनका दुर्भाग्य भी था। अपने सभी परीक्षणों के परिणाम प्रकाशित कर पाने के चार महीने पहले ही जर्मनी के बर्नहार्ड जोण्डेक तथा सेलमर आस्खीम ने जन्तुओं की पीयूष-ग्रन्थि

की उस जननग्रन्थि प्रेरक हॉरमोन का सत्त्व निकालने में सफलता प्राप्त की, जिससे अण्डाशय तथा अण्ड-ग्रन्थि का प्रस्राव होता है।

अपने परीक्षणों के सिलसिले में जोण्डेक ने देखा कि उनकी पीयूषग्रन्थि के सत्त्व का जो प्रभाव चूहों पर होता है, वही प्रभाव उन पर गर्भवती स्त्रियों के मूत्र के इन्जेक्शन देने पर होता है। इसी के आधार पर जोण्डेक तथा आस्कॉम ने सर्वप्रथम स्त्रियों के गर्भवती होने, न होने की एक विश्वसनीय परीक्षाविधि की सफलतापूर्वक खोज की। यह परीक्षाविधि १९२८ ई० से अब तक अत्यधिक परिवर्तित परिवर्द्धित की जा चुकी है। इस परीक्षा द्वारा उस स्त्री के मूत्र का इन्जेक्शन किसी ऐसे मादा मेढक, खरगोश अथवा चूहे को लगा दिया जाता है जिसने मैथुन न किया हो। २४ घण्टे बाद इस जानवर को मार दिया जाता है और इसकी योनि में विशेष प्रकार के कोशिक परिवर्तन पाये जाते हैं। यह विधि जो ९९ प्रतिशत प्रामाणिक है, महीना न होने के दस दिनों बाद ही स्त्री के गर्भवती होने, न होने का निर्णय कर देती है।

इन सभी प्रगतियों के साथ ही साथ पीयूषग्रन्थि के अग्रभाग के चौथे हॉरमोन की घोषणा हो गयी। कोल्डस्प्रिंग हारबर, लॉंग आइलैण्ड के ऑस्कर रिडल ने पीयूषग्रन्थि के सत्त्व को कबूतरों को खिलाया तो पता चला कि शल्य-दुग्ध का उनका स्रावण बहुत बढ़ गया है। दुग्ध-उत्पादक इस हॉरमोन का, जिसका रिडल ने 'प्रोलेक्टिन' नामकरण किया, दूसरे जन्तुओं के स्तनों में भी दूध उत्पन्न कर देता है। यहाँ तक देखा गया कि नर जन्तुओं तक की स्तन-ग्रन्थियों में दूध भर गया और एक बिलार ने भी इसके इन्जेक्शन के बाद दूध दिया। बाद में रिडल ने यह भी रिपोर्ट दी कि प्रोलेक्टिन मातृभाव की भी वृद्धि करता है।

एक फ्रेंच अनुसंधानकर्त्ता ने १९३३ ई० में पीयूषग्रन्थि के अग्रभाग में एक पाँचवें हॉरमोन के होने की रिपोर्ट दी और बताया कि इससे गलग्रन्थि पर प्रभाव पड़ता है और अब इस हॉरमोन को थाइरोट्रोपिन के नाम से पुकारते हैं।

इसी बीच इवान्स कैलिफोर्निया-विश्वविद्यालय के प्राणिविज्ञान-संस्थान के निदेशक हो गये और पीयूषग्रन्थि के शुद्ध सत्त्व की प्राप्ति की समस्या से उलझे रहे। १९३९ ई० में उन्होंने घोषणा की कि वे विकास-प्रेरक हॉरमोन के निर्धारण में सफल हो गये हैं। फिर भी ऐसे कुछ वैज्ञानिक रहे जिन्होंने उनके हॉरमोन को शुद्ध विकासीय हॉरमोन नहीं माना, और उसे एक मिश्रित हॉरमोन रहे। और दूसरे ऐसे वैज्ञानिक भी थे जो इसे शुद्ध विकास-प्रेरक हॉरमोन को तैयार ही न थे। १९४१ ई० तक पीयूषग्रन्थि की ३ . . हॉरमो

थाइरोट्रोपिक हॉरमोन का रासायनिक शुद्ध रूप तैयार कर लिया गया। इन रासायनिक सत्त्वों के इन्जेक्शन दिये गये और उनमें सफलता प्राप्त हुई, विशेष गुणों की वृद्धि हुई। और फिर एक विवाद उठ खड़ा हुआ। रिडल ने कहा कि विकास-प्रेरक हॉरमोन के सिद्धान्त की उपयोगिता मानते हुए भी वे उसे वास्तविक सत्य मानने को तैयार नहीं है। इवान्स के अनुसार पीयूषग्रन्थि के सत्त्व द्वारा प्रेरित चूहों के विकास के लिये न अवटुप्रेरक, न दुग्धप्रेरक, और न ही जननग्रन्थि-प्रेरक हॉरमोन की आवश्यकता है। १६४१ ई० मे उन्होंने यह प्रदर्शित कर दिया कि मादा चूहों के विकास के लिये थाइमस ग्रन्थि, वाल्य-ग्रन्थि की भी आवश्यकता नही है। तीन वर्ष बाद केण्टन के चो हाग्रो लि, जिन्होंने इवान्स के शिक्षण मे डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की थी, बैलों की पीयूष-ग्रन्थि से विकासप्रेरक हॉरमोन तैयार करने में सफल हुए। इसमे किसी प्रकार का दुग्धप्रेरक, कूपप्रेरक, अवटु-प्रेरक अन्तराल-कोशिका का प्रेरक प्रभाव नहीं था। यह शुद्ध द्रव्य था। चो तथा इवान्स ने इसकी घोषणा 'साइन्स' पत्रिका में की। इससे भी यह विवाद समाप्त नही हुआ। चार्ल्स स्टोकार्ड का विश्वास था कि एतद्विषयक भिन्न मत तथा व्याप्त भ्रम इसी कारण हैं कि विकास की वास्तविक क्रिया का अभी पूर्ण ज्ञान हमे नही है और जब तक इस क्रिया का, शरीर-विकास के पूरे तन्त्र का, पूरा-पूरा ज्ञान हमे नही होगा तब तक यह गडबड़ी और विवाद चलते रहेंगे।

इवान्स को एक और बडी प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त हुआ। वे तथा उनके सहयोगी चो हाग्रो लि और मिरियम सिम्पसन ने हाइपोफेसिस के अग्रभाग के एक छठे हॉरमोन को शुद्ध किया। यह हॉरमोन अधिवृक्क-ग्रन्थि की बाहरी छाल को विकसित करता है तथा अपने से हॉरमोन की उत्पत्ति करता है, जिसे कारटिज़ोन कहते है। इसे ए० सी० टी० एच० (ACTH) कहकर भी पुकारते है। १६४६ ई० में इसके द्वारा सन्धिवात तथा गठिया-ज्वर के सफल उपचार से संसार में बिजली-सी दौड गयी। सन्धिवात के ख्यातिप्राप्त सफल डॉक्टर फिलिप हेन्च तथा जीव-रसायन के विद्वान् एडवर्ड केण्डल, जिन्होने थाइरोक्सिन और बाद में कारटिज़ोन को अलग कर शुद्ध साफ किया, सधिवात तथा गठिया-ज्वर का अचूक उपचार इन दवाओ से करने लगे। १६५० ई० में इन दोनों को औषधि के लिये नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया और कारटिजोन द्वारा सधिवात का उपचार कर जनता के दुःख दूर करने के लिए इन्हे सम्मानित किया गया।

इवान्स का यह शुद्ध द्रव्य आरमर कम्पनी ने संयुक्त राज्य की सभी प्रमुख अन्त.स्रावी निदानशालाओं को सुलभ कर दिया। कारटिजोन का सत्त्व प्राप्त करना बड़ा कठिन था। इसकी एक ग्राम मात्रा प्राप्त करने के लिए लगभग

१ लाख ८० हजार भेड़ो को मारना पड़ता था और उनकी अधिवृक्क ग्रन्थियाँ निकालनी पड़ती थी । ए० सी० टी० एच० की इतनी मात्रा के लिए कई हजार सूअरो की पीयूषग्रन्थियाँ निकालनी, छीलनी, साफ करनी होती थी। यह बहुत समय लेने वाला और व्ययसाध्य तरीका था और इसलिये आवश्यक हो गया कि इसे कृत्रिम विधि से प्राप्त किया जा सके ।

बडी तत्परता के साथ इस जीवनदायी तत्त्व के निर्माणकार्य मे रासायनज्ञ जुट गये । राबर्ट वुडवर्ड, जिन्होंने केवल बीस वर्ष की ही अवस्था मे मैसाचुसेट्स के उद्योगविद्या-संस्थान से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की थी, बाजी मार ले गये और उन्होने कारटिजोन का उत्पादन सफलता से कर लिया ।

किन्तु ए० सी० टी० एच० को पकड़ पाना बड़ा कठिन साबित हुआ। । संश्लिष्ट रसायन के बड़े जीवट वाले धुरन्धर लोग भी इसको काबू मे न ला सके । १९५५ ई० मे अनुसन्धान-कार्य मे रत वैज्ञानिकों के दो दल अमरीकी स्यानामिड कम्पनी मे कार्य कर रहे थे तथा इवान्स प्रयोगशाला मे चो हाओ लि के निर्देशन में कार्यरत एक दल ने रिपोर्ट दी कि इसमें ५९ से अधिक एमिनो-ऐसिड तत्त्व, अणुओ की एक लम्बी माला के रूप मे गुथे हुए है ।

अन्य बहुत से लोग हॉरमोन के क्षेत्र में जुटे हुए थे । सेन्ट लुई विश्वविद्यालय के औषधि-संस्थान की प्रयोगशाला मे एडवर्ड डोइज़ी ने जोण्डेक की मूल रिपोर्ट पढ़ी और इससे डिंबग्रन्थि अथवा अण्डाशय के हॉरमोन की तलाश मे एक नयी दिशा मिली । अस्पतालो से डोइज़ी ने गर्भवती स्त्रियों का बहुत सा मूत्र एकत्र किया । नये-नये यन्त्र लगाकर वे लगभग पचास गैलन मूत्र को एक साथ काम में लाने लगे । छः वर्ष तक कई प्रकार की विलयन-क्रियाओ द्वारा इस तरल-सागर मे से हारमोन निकाल सकने के प्रयत्न मे वे सलग्न रहे और अन्त मे एक प्रयत्न में प्रभावकारी द्रव्य निकालने मे उन्हे सफलता मिली किन्तु वह एक का चालीस लाखवाँ हिस्सा ही था । १९२९ ई० मे डोइज़ी ने घोषणा की कि डिंबग्रन्थि के हॉरमोन का शुद्ध मणिभीय रूप उन्होंने प्राप्त कर लिया है ।

इस नये हॉरमोन का नाम उन्होने इस्ट्रोन रखा। कई और भी मादा सेक्स हॉरमोन एलफा-एस्ट्राडियोल और एस्ट्रियोल का पता भी डोयज़ी और उनके सहयोगियों ने लगाया । एस्ट्राडियोल प्रधान मादा सेक्स हॉरमोन है । इसके कारण यौवनारम्भ के समय स्त्रियों मे शारीरिक परिवर्तन होते हैं । इसका उत्पादन अण्डाशय के कूपो के अन्दर कोषाणुओ द्वारा होता है और यह एस्ट्रोन से दस गुना अधिक शक्तिशाली होता है ।

अण्डाशय का दूसरा हॉरमोन प्रोजेस्टिरोन है । रोचेस्टर-विश्वविद्यालय मे १९३० ई० में जार्ज कॉर्नर ने प्रोजेस्टिरोन, अपरिष्कृत सत्त्व रूप मे निकाला ।

१६३४ ई० मे बुटेनाण्ट की तथा अन्य तीन प्रयोगशालाओं मे इसे परिष्कृत किया गया और इसका सश्लिष्ट रूप तैयार हुआ। यह गर्भाशय के अन्दर की त्वचा को तैयार करता है जिससे अण्डाणु का निरोपण हो सके और भ्रूण के विकास के निमित्त पौष्टिक तत्त्व मिल सके। मादा सेक्स हॉरमोन अत्यधिक मात्रा में गर्भवती मादा पशुओं के मूत्र मे और विशेषकर गर्भवती घोड़ियों के मूत्र में सुलभ है। इसका प्रयोग सफलता के साथ हेमोफिलिया, बच्चियों की योनि के मोटेपन, असाधारण मासिक स्राव, उग्र रजोनिवृत्ति के लक्षणों के समय जराजनित रोगों मे, अनुर्वरता, समय पर यौवनारम्भ न होने पर, असामयिक शिशुता आदि रोगों के निदान के लिये किया गया।

अमरीकियों की इस असाधारण सफलता के बाद वे पुंस्त्वकारी हॉरमोन, एण्ड्रोजेन्स, की समस्या सुलझाने पर जोरों से लग गये। १६२३ ई० से ही शिकागो विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिक एफ० सी० कोच के निर्देशन में इस शोधकार्य मे लगे हुए थे। लेमुएल मैक्गी नामक एक कार्यकर्ता ने बैलो की अण्डग्रन्थि के ऊतकों को महीन काटकर सत्त्व निकालने मे सफलता प्राप्त की। मुर्गे की अण्डग्रन्थि के निकाल देने से मुर्गा अधिक कोमल हो जाता है और दूसरे मुर्गों से अन्य कई और तरह से भिन्न हो जाता है। इस क्रिया का मानसिक प्रभाव होता है और लड़ाकू बहादुर मुर्गा, डरपोक, शान्त तथा मातृ-भाव वाला हो जाता है। उसके सिर पर की लाल चमकीली कलगी तथा उसके बड़े-बड़े रंगीन पर कम विकसित तथा कम चटकीले हो जाते है।

१६२७ ई० में मैक्गी ने इस सत्त्व का इन्जेक्शन ऐसे मुर्गे को लगाया जिस की अण्डग्रन्थि निकाल दी गयी थी। शीघ्र ही उसके सिर की कलगी तथा उसके पर अधिक विकसित तथा चटकीले चमकदार हो गये। मैक्गी का सत्त्व पुंस्त्वकारी हॉरमोन से निकाला गया था, और इसी कारण इन पुंस्त्वकारी गुणों का विकास हुआ। फिर कोच और उनकी पत्नी ने इसको परिष्कृत-परिमार्जित कर शुद्ध स्फटिक रूप मे लाने के प्रयत्न किये। १६३२ ई० मे यूरोप से समाचार मिला कि परिष्कृत हॉरमोन स्फटिक-रूप मे प्राप्त कर लिया गया है। इस बार एडोल्फ ब्युटेनाण्ट, जो पहले मादा सेक्स हॉरमोन के सत्त्व के निकालने मे डोइजी से पिछड गये थे, बाजी मार ले गये और विजयी हुए। उन्होंने इस हॉरमोन को मनुष्यों के गुर्दे के पानी से, न कि उनकी अण्डग्रन्थियों से प्राप्त किया था।

यह पुंस्त्वकारी हॉरमोन एण्ड्रोस्टिरोन, पुरुषों के मूत्र में रहता है और ण्डकोष का हॉरमोन नही है। अण्डकोष का हॉरमोन जो प्रधान पुंस्त्वकारी-

हॉरमोन है, उसे परिष्कृत स्फटिक रूप में हॉलैण्ड के ई० लैकर ने १६३५ ई० में प्राप्त किया। इसका नाम टेस्टोस्टिरोन रखा गया। यह दूसरा नर हारमोन एण्ड्रोस्टिरोन से कही अधिक शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण है।

पहली बार विज्ञान के हाथ दो परिष्कृत अत्यन्त प्रभावपूर्ण पुंस्त्वकारी हॉरमोन लगे, जिससे सेक्स-ग्रन्थि की शल्यक्रिया द्वारा पुनर्यौवन के सिद्धान्त को परखने-जांचने की सुविधा प्राप्त हुई। १८८६ ई० से ही सेक्स-ग्रन्थि की सहायता से पुनर्यौवन प्राप्त करने की धुन लोगो मे आ चुकी थी। उसी साल चार्ल्स ब्रॉउन सिकार्ड ने, जो हार्वर्ड में पहले तन्त्रिका-विकृति विज्ञान के प्राध्यापक थे, पेरिस में जीवविज्ञानशास्त्रियो की सभा मे भाषण दिया। उन्होने उपस्थित वैज्ञानिकों को बताया कि किस तरह उन्होने पुनर्यौवन की लालसा में कुत्ते की अण्डग्रन्थि के स्राव के अपरिष्कृत जलीय सत्व के इन्जेक्शन लिये। इस उपचार से वृद्धावस्था के प्रभाव का निवारण हुआ। इसके फलस्वरूप रातों-रात ग्रन्थि चिकित्सकों तथा पुनर्यौवन के विशेषज्ञों की बाढ़-सी आ गयी। पुनर्यौवन सम्बन्धी यह पागलपन संयुक्त राज्य में १६१६ ई० के आस-पास अत्यधिक बढ गया था और वियेना के सर्जन वोरोनोफ तथा पेरिस के यूजेन स्टाइनाक के परीक्षणों की बड़ी चर्चा और धूमधाम थी। बधिया घोड़ो, बैलों, बकरो तथा भेडों पर प्रारम्भिक परीक्षणों के बाद वोरोनोफ ने कहा : "१६३० मे मानवीय शरीर के बहुत से 'पुर्जे' मुझे बन्दरो की विकसित स्पीशीज मे मिले और १६१३ तथा १६२८ के बीच मैंने करीब एक हजार लोगों के शरीर मे जानवरो के अंग लगाये।"

सेक्स हॉरमोन की खोज के बाद स्टाइनाक ने बन्दरो की ग्रन्थियो की शल्य-क्रिया जिसमें कॉट-छॉट करनी पड़ती थी, छोड़ दी और एस्ट्रोजेन तथा टेस्टोस्टिरोन के सरलता से इन्जेक्शन लगाने शुरू कर दिये। किन्तु फिर भी वृद्धों मे यौवन का उत्साह, शक्ति और जोश लाने की समस्या बनी ही रही। स्टोकार्ड ने कहा . "स्टाइनाक और वोरोनोफ इस भ्रामक धारणा मे पड़ गये कि सेक्स ग्रन्थि के ह्रास के कारण ही वृद्धावस्था आरम्भ होती है। यह बडी भूल है। यह केवल एक लक्षण है, कोई विश्वसनीय कारण नही। बैल तथा घोड़े और मुर्गे, जिनके अण्डकोष काट दिये जाते है, वे शीघ्रता से वृद्ध नही होते।"

हॉरमोन-अन्वेषण का कार्य धुआँधार रीति से हुआ, बहुत बढा और लिंग-निर्धारण के जीन अथवा एक्स-वाई क्रोमोसोम की प्रक्रिया के सिद्धान्त को भी, जिसका प्रदर्शन टी० एच० मोरगन के आनुवंशिकी के विशेषज्ञों के गुट ने किया था, अपनी लपेट मे ले लिया। उन्होने इस सिद्धान्त की वास्तविकता के . . मे बड़े-बड़े सुबूत इकट्ठे कर लिये, विशेषकर ड्रोसोफिला के सम्बन्ध

आज भी विज्ञान लिंग-निर्धारण के किसी एक सर्वसम्मत सिद्धान्त से कोसों दूर है और स्थिति यह है कि क्रोमोसोम के गुण तथा शरीर की सभी ग्रन्थियों की प्रक्रिया ही लिंग-निर्धारण का कार्य करती हैं। मानवीय शरीर तथा अन्य जन्तुओं के लिंग-निर्धारण का आखिरी निश्चय क्रोमोसोम से ही होता है। स्पष्ट रूप से यदि भ्रूण की प्रत्येक कोशिका में दो एक्स क्रोमोसोम हों तो फिर विकसित होकर वह मादा बनेगी और यदि एक एक्स और एक वाई क्रोमोसोम हों तो नर। और फिर ये क्रोमोसोम लिंग-विकास को कैसे प्रभावित करते हैं, यह अब तक रहस्य ही बना है। हम यह अवश्य जानते हैं कि लिंग-विकास के निकटतम कारणों में एक सेक्स हॉरमोन है। विविध ग्रन्थियों के पारस्परिक प्रभाव के बारे में भी बहुत-कुछ जानते हैं। एक अत्यन्त विषम प्रतिपुष्टि की विशिष्ट क्रिया द्वारा एक ग्रन्थि दूसरी ग्रन्थि को सचालित करती है। सभी एक-दूसरे का सन्तुलन बनाये रखती हैं। फिर भी हमें यह बिल्कुल नहीं मालूम कि क्रोमोसोम किस प्रकार हॉरमोन की उत्पत्ति अथवा लिंग-सम्बन्धी किसी पक्ष को प्रभावित करता है।

१९३२ ई० में हरबर्ट जेनिंग्स ने लिंग-निर्धारण की समस्या को इन शब्दों में स्पष्ट किया था, "विकास की अवस्था में जीन के बहुत से असर उन हॉरमोनों की उत्पत्ति के कारण होते हैं, जिनका सृजन वे करते हैं। कौन से हॉरमोन विद्यमान हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि प्रारम्भ में किस वर्ग के जीन वहाँ थे।"

अन्तःस्रावी विज्ञान ने एक नयी औषधि और एक नये मनोविकार-विज्ञान को जन्म दिया है, जो अभी शैशवावस्था में है। मनोविकार-विज्ञान के क्षेत्र में स्टोकार्ड ने कुछ सुबूत पेश कर यह प्रदर्शित किया कि ग्रन्थियों तथा व्यक्ति में पारस्परिक सम्बन्ध है। कोरनेल विश्वविद्यालय के प्रायोगिक आकृति-विज्ञान सम्बन्धी फार्म में, कुत्तों के साहचर्य में उन्होंने देखा कि विशिष्ट व्यक्तित्व, अधिकतर वंशगत होता है। किन्तु प्रायः सभी मामलों में इनका सम्बन्ध अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की विचित्र प्रतिक्रियाओं से होता ही है। खास किस्म के कुत्तों में अंगघात का कारण एक विशेष ग्रन्थीय विषमता है। यह भी दिखाया गया कि स्नायविक प्रणाली का प्रभाव लिंग-ग्रन्थि पर पड़ता है। कुछ लोगों की दृढ धारणा है कि भविष्य में शरीरविज्ञान ऐसे तरीके निकाल लेगा जिससे व्यक्तित्व का परिवर्तन हॉरमोन के जरिये किया जा सके। बुद्धिमान् लोग ऐसे यंत्र बनाने की बात नहीं करते जिसके द्वारा प्रकृति और स्वभाव आवश्यकतानुसार बनाये जायें, नीच, क्रोधी, मूर्खों के स्थान पर दयालु, संयत, योग्य पुरुष का निर्माण। परन्तु जहाँ भी थोड़ा-सा प्रकाश मिलता है वहीं काम जोरों से

आरम्भ कर दिया जाता है, इस आशा मे कि जीवन को प्राणिविज्ञान पूरी तरह काबू मे कर सके ।

हॉरमोन के अतिरिक्त और भी चीजें है जो स्वास्थ्य और व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। विटामिन का अध्ययन और पौष्टिक भोजन के सम्बन्ध मे ज्ञान, ये अमरीकी शोधकार्य मे गौरव का प्रतीक है। हॉरमोन की तरह ही इस क्षेत्र मे भी अमेरिका के वैज्ञानिको का योगदान विशेष महत्त्व का है। इवान्स उन इने-गिने लोगो मे से है जिन्होंने दोनों ही क्षेत्रों मे क्रान्तिकारी कार्य किया है और मार्गदर्शन किया है। उन्होंने हॉरमोन के अध्ययन मे अविस्मरणीय योगदान ही नही किया, अपितु विटामिन के क्षेत्र मे अपने अन्वेषणों तथा सफलताओ से ज्ञान की परिधि बढा दी है। उन्होने अपना कार्य केवल रसायनज्ञ की तरह ही नही किया, वरन् शरीर-विज्ञान के सभी सम्बद्ध विषयो पर दृष्टि रखते हुए कुशल शरीर-शास्त्री के रूप मे अपना शोधकार्य किया।

इवान्स ने विटामिन के अध्ययन का आरम्भ कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रायोगिक शरीर-विज्ञान-सस्थान मे चूहो के मैथुन के कालचक्र की खोज के साथ किया। जन्तुओं का आहार उनके मैथुन-चक्र को प्रभावित करता है, इस सम्भावना से उन्होने इस विषय में रुचि ली। प्रथम विश्वयुद्ध मे अमेरिका के शामिल होने के तीन वर्ष पहले विसकोन्सिन विश्वविद्यालय में मैककोलम ने विटामिन ए और बी का पता लगा लिया था। मैककोलम ने इन विटामिनो से सम्पुष्ट ऐसे आहार बना दिए थे जिन्हे इवान्स अपने चूहों को खिलाते थे। इवान्स को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस आहार पर पले चूहे स्वाभाविक कालचक्र से मैथुन करते है, गर्भ धारण करते है किन्तु स्वाभाविक रूप से गर्भ मे भ्रूण विकसित नही हो पाता। विकासशील भ्रूण हर बार मर जाता है। विटामिन ए और बी दोनों ही इस विचित्र गर्भाशय के भीतर होने वाली मृत्यु को रोक नही पाते।

अब तो ऐसे आहार की खोज प्रारम्भ हुई जिससे गर्भाशय का भ्रूण ठीक-ठीक विकसित होकर जन्म ले सके। सलाद के ताजे पत्ते और अलफाल्फा के पत्तो मे यह आवश्यक तत्त्व मौजूद मालूम हुआ, क्योकि चूहों के आहार में इनको मिला देने पर अनुर्वरता समाप्त हो गयी। गेहूँ के दाने भी सबल पाये गये। गेहूँ के दानो के चमकदार तेल की एक बूँद से ही देखा गया कि चूहो की उर्वर शक्ति बढ गयी। इवान्स ने प्रतीक्षा की तब तक, जब तक कि उन्हे यह निश्चय नहीं हो गया कि कि आहार की यह कमी, जिसका एकदम कोई ज्ञान [illegible] गा, नर चूहो को अनुर्वर बनाती है, तथा मादा चूहो के गर्भाशय में [illegible] मृत्यु का कारण है। और तब १९२२ ई० के दिसम्बर मे उन्हे

एक्स के खोज की घोषणा की। इसका नाम बदल कर बाद मे विटामिन ई कर दिया गया।

इस अन्वेषण का औरतो पर प्रयोग करने का विचार इवान्स को ही नही, कई और लोगो को भी हुआ। उन्होने उन हजारों नारियों के बारे में सोचा, जो यों तो स्वस्थ है, किन्तु प्रजनन के पहले ही अपने बच्चों से हाथ धो लेती है। यद्यपि इवान्स ने अपने विटामिन ई के सम्बन्ध में यह दावा नही किया कि वह स्त्रियों पर सफल होगा, लेकिन डेनमार्क के डाक्टर वोटमुलर ने विटामिन ई का कुछ ऐसी गायो पर प्रयोग किया जिनके बच्चे पेट में ही मर जाते थे और उन्हें सफलता मिली। और तब जुलाई १९३१ मे चिकित्सा की अंग्रेजी पत्रिका लान्सेट मे उन्होने अपने प्रयोगो की चर्चा की। पहला प्रयोग चौबीस वर्षीया एक महिला पर किया जिसके चार बच्चे गर्भ मे ही मर गये थे। इसे उन्होंने गेहूँ का तेल खाने को दिया और फिर जो गर्भ रहा वह सकुशल विकसित हुआ और स्वस्थ बच्चे को उसने जन्म दिया। दूसरा प्रयोग उन्नीस-वर्षीया महिला पर किया जिसके पहले बच्चे के बाद लगातार चार गर्भपात हुए। इस महिला को दो चम्मच गेहूँ का तेल प्रति सप्ताह खाने के साथ दिया गया और इसके साथ भी पहली स्त्री की भाँति सफलता मिली। और भी कुछ लोग माताओ के लिए विटामिन ई आवश्यक मानते है, किन्तु चिकित्सा का संसार अभी शंकालु है तथा अधिक विश्वसनीय तथ्यो की प्रतीक्षा मे है। कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के हेनरी शारमन को ऐसे सबूत मिले जिनसे उन्होंने देखा कि विटामिन ए का अभाव भी प्रजनन-क्रिया को कम करता है। इसलिए विटामिन ई प्रजनन का अनिवार्य विटामिन कदापि नही है किन्तु इसमे प्रजनन के लिए आवश्यक रसायनो में से एक अवश्य है।

विटामिन ई तथा प्रजनन के सम्बन्ध की समस्या अभी स्पष्ट नही हुई है। इवान्स के अनुसार, कई बे सवाल और समस्याएँ जिनका उत्तर और निदान प्राप्त करना है, वे हैं इस विटामिन की भ्रूण के विकास मे क्या क्रिया होती है? ई के अभाव मे दुधमुँहे बच्चे क्यों मर जाते हैं और फिर आप से आप कैसे उनकी रक्षा होने लगती है? अस्पतालो में क्या ऐसा ही वातावरण और परिस्थितियाँ हैं? इन प्रश्नो के उत्तर पाने के लिए इवान्स और उनके सहयोगी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की चूहे की बस्ती पर निरन्तर प्रयोग करते रहे।

इसी बीच कोपेनहेगन-विश्वविद्यालय के जीव-रसायन के संस्थान ने १९३५ ई० के प्रारम्भ मे यह सूचना दी कि उनके एक शोध-कार्यकर्ता हेनरिक डैम ने मुर्गियो के लिए आवश्यक एक अन्य चर्बी गलाने वाले विटामिन का प्रकाट्य

प्रमाण पा लिया है। उन्होंने इस विटामिन को सूअरों के जिगर, चर्बी, दालों और टमाटर में पाया है। हरी पत्तियो में यह अधिक पाया जाता है। इस विटामिन के दाने यदि मुर्गी के बच्चों को खिलाये जायें तो उनका रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। स्केण्डिनेविया और जर्मन का शब्द कोएगुलेशन्स विटामिन से इसका नाम विटामिन 'के' रखा गया।

इसका परिष्कृत रूप प्राप्त करने के लिए प्रयत्न होने लगे। १६३८ ई० में सिडनी थेयर और एडवर्ड डोयजी ने विटामिन 'के' को रंगहीन स्फटिक के रूप मे प्राप्त कर लिया। यह कार्य सेण्ट लुई विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के अन्तर्गत जीव-रसायन भाग में सम्पन्न हुआ। और बाद मे मछलियों के सड़े-गले खाद्य-पदार्थ से विटामिन 'के$_2$' प्राप्त किया गया। डोयजी और उनके सहयोगियों ने १६३६ ई० में इस विटामिन को संश्लिष्ट भी कर लिया और चार साल बाद कोपेनहेगन के डैम के साथ नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया।

जब इवान्स विटामिन के क्षेत्र में आये तब तक अमरीकियों ने बहुत काफी इस क्षेत्र मे प्रगति कर ली थी। आरम्भिक कार्य और प्रगति का कारण यह चिन्ता थी कि दूध और अच्छे मास के लिए जानवरों को कैसा आहार दिया जाय। सरकारी कृषि के प्रयोग-केन्द्रों में सर्वप्रथम यह शोधकार्य आरम्भ हुआ।

विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय के कृषि के प्रायोगिक केन्द्र में ही प्रमुख आरम्भिक शोधकार्य हुआ। वही पुराने प्रश्न अब भी थे और उत्तर कोई नही था। यदि रासायनिक तत्त्व और ऊर्जा का मूल्य वही हो तो फिर कैसा ही आहार दिया जाय, इसमे क्या कोई अन्तर है? शायद यह सजीव प्राणी उस भट्टी से तो अच्छा ही है जिसमे आवश्यक ताप के लिए निश्चित मात्रा में कोयला झोंक दिया जाता है। यह मानना तर्कसंगत मालूम पड़ता है कि किसी विशेष आहार के कुछ ही तत्त्व स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। क्या यह सत्य नही कि किसी जानवर के एक प्रकार का आहार ही पेट भर खाते रहने से वह रोगी बन सकता है अथवा किसी विशेष तत्त्व के अभाव मे मर भी सकता है?

स्टीफेन बैबकोक ने उस समय के सभी सिद्धान्तो की परीक्षा करने का एक प्रयोग निकाला। उन्होने स्वयं अनुभव किया कि ऊष्मीय मान ही सम्पूर्ण कथा नही है। विश्वविद्यालय के चारो ओर बसे किसान निरन्तर यही प्रश्न करते थे कि जानवरो को क्या आहार दिया जाय। यह एक सीधा

सवाल था जिसका उत्तर अमरीकी विज्ञान को देना है । इसलिए जो कुछ भी घटना घटी, अथवा अमरीका के वैज्ञानिकों को उनके जीवन के रोमांचकारी अनुभवों को प्राप्त करने के लिए जो कुछ करना पड़ा, उस सब के पीछे किसानों का यह सीधा-सादा प्रश्न ही था ।

१६०७ के प्रारम्भ में प्रयोग शुरू हुए और एडविन हार्ट इस काम पर लगाये गये । गायों के बच्चों के चार दलों को अलग-अलग आहार पर रखा गया । एक को गेहूँ खिलाया गया, दूसरे को मक्का, तीसरे को जौ, और चौथे को तीनों का मिश्रण । बड़ी सतर्कता से किये गये रासायनिक परीक्षण और माप-तोल से यह निश्चय हो गया कि सभी दलों को एक से रसायन और एक निश्चित मात्रा की ऊष्मा ऊर्जा प्राप्त होती है । इन बच्चों के आहार की ही मापतोल नहीं होती थी, किन्तु इनके गोबर और गोमूत्र की भी माप-तोल की जाती थी । इस सारी प्रक्रिया का अधिक कार्य एलमर मैक्कोलम को दिया गया, जो हाल ही में यहाँ आये थे ।

प्रतिदिन प्रातःकाल सभी लोग एकत्र होकर कार्य की प्रगति पर विचार करते थे । मैक्कोलम की रुचि अवश्य थी किन्तु किसी तरह इस समस्या को सुलझाने के इस तरीके के प्रति उनका मन शकालु था और वे किसी अन्य सरल तरीके से ही इस समस्या को सुलझा पाना ठीक मानते थे । जो खोज की जा रही थी, वह बड़े काम की और उपयोगी अवश्य थी और यह भी आशा निर्मूल नहीं थी, कि अत्यन्त मनोरजक ज्ञानवर्द्धक नयी सूचनाएँ भी इसमें प्राप्त होंगी, किन्तु इस खोज से पौष्टिक आहार की बड़ी समस्या का निदान नहीं हो सकता । मैक्कोलम का विचार था कि अन्वेषक जो छोटे जन्तुओं पर प्रयोग कर रहे थे, उन्हीं का काम ठीक दिशा में हो रहा है । उन्होंने फिर एक दूसरे प्रकार का परिवर्तन किया । जानवरों के आहार में ऐसी कोई भी वस्तु न हो जो शुद्ध रासायनिक तत्त्व न हो और जिसके प्राय. सभी तत्वों का निश्चित ज्ञान न हो ।

१६०७ के अन्त में, विस्कोन्सिन आने के कुछ महीनों बाद उन्होंने अपने परीक्षणों के लिए चूहों की एक बस्ती बनाई । इन केन्द्रों के निदेशक माल्थस सिद्धान्त के अनुयायी थे और मैक्कोलम की इस योजना के प्रति उनकी कोई सहानुभूति न थी । विद्यालय के अध्यक्ष भी इस समस्या के हल करने के मैक्कोलम की इस नयी योजना के विरोधी थे । किन्तु बैबकोक मैक्कोलम की प्रयोगशाला में आये, एक ऊँचे तिपाये पर बैठ कर इस नवयुवक की योजना को उन्होंने देखा और परखा, और अपनी पैनी दृष्टि से उनकी कार्यविधि को परख कर अपनी स्वीकृति दे दी । इस तरह मैक्कोलम ने अपने परीक्षण जारी

नम्बर का चूहा अस्सी दिनों तक शुद्ध केसीन, श्वेत सार, दुग्धशर्करा, नमक तथा सूअर की चर्बी के आहार पर पला। फिर एकाएक चूहे के वजन में कमी होने लगी। थोड़ा-सा फिर मक्खन का सत्त्व उसके आहार मे मिलाया गया और शीघ्र ही उसके वजन मे सुधार होने लगा। आगामी पैंतीस दिनों में उस चूहे का वजन ५० ग्राम बढ गया। मैक्कोलम ने तब मक्खन के स्थान पर अण्डे की जर्दी का सत्त्व उसके आहार मे दिया और इससे विकास-क्रम बढ़ता ही रहा लेकिन जब जैतून के तेल का सत मिलाया गया तो विकास का क्रम रुक ही गया। मैक्कोलम ने इससे यह नतीजा निकाला कि चर्बी और तेल, रासायनिक तत्त्वों में थोड़ा भिन्न होते हुए भी, शरीर के विकास के लिये इनकी शक्ति मे बड़ा अन्तर है क्योंकि इनके अन्य सत्त्वो मे एक ऐसा भी तत्त्व है जिसे हम नहीं जानते—चर्बी मे घुलनशील विटामिन ए।

दो वर्ष बाद, मैक्कोलम ने एक दूसरे विटामिन को खोज निकाला। यह उन्होने उस पानी से निकाला, जिसमें से दुग्धशर्करा का सत्त्व निकाला जा चुका हो। यह एक ऐसा रसायन साबित हुआ जिससे मनुष्य बेरीबेरी रोग से मुक्त हो सकते थे। मैक्कोलम ने इस नये तत्त्व को पानी मे धुल जाने वाला विटामिन बी कहा। विटामिन के सम्बन्ध में फैला हुआ भ्रम अब बहुत कुछ साफ हुआ। अवश्य ही कुछ ऐसे रसायन है, जिनकी थोडी मात्रा में ही क्यों न हो, स्वास्थ्य के लिये आवश्यकता होती है। मैक्कोलम ने ऐसे दो सत्वों का पता लगा लिया था। १९१२ ई० मे ए० होल्ट ने तीसरे विटामिन, सी, का पता लगाया, जिसमे स्कर्वी की रोकथाम होती है।

दूसरे विटामिनों की भी खोज हुई। १९२२ ई० के अगस्त मे मैक्कोलम ने चर्बी विलेय विटामिन डी की खोज की घोषणा की। इसे उन्होंने मछली के जिगर के तेल से प्राप्त किया और इस विटामिन द्वारा सूखा रोग का उपचार सम्भव हुआ। दूसरे ही साल तीन व्यक्तियो ने अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से कार्य करके, करीब-करीब एक साथ ही एक बड़े विस्मयकारी सश्लेषण के कार्य की घोषणा की। न्यूयार्क के एल्फ्रेड हेस, लिस्टर इन्स्टीट्यूट, लन्दन के गोल्ड-ब्लाट और मेडीसन, विस्कोन्सिन के हैरी स्टीनबोक ने विटामिन डी की कमी वाले भोजन पर, परावैंगनी प्रकाश डाला और इससे यह भोजन सूर्य किरण की रसायन से युक्त स्वास्थ्यप्रद भोजन बन गया।

मार्ची ब्लैक की सहायता से स्टीनबोक ने बड़े सरल तरीके से यह कार्य किया। उन्होंने अंधेरे कमरे में चूहों को पाला और उन्हे ऐसा आहार दिया जिससे सूखा रोग हो जाय। चूहो को शीघ्र ही सूखा रोग हो गया। स्टीनबोक ने तब उनके आहार को प्रकाश मे रखा और फिर उस अंधेरे कमरे मे बन्द

हा।हार दिया। इससे चूहे सूखा रोग से मुक्त हो
तरीका मनुष्यो के भोजन पर, जिनमे विटामिन
चूहों को वही यह प्रकाशित और उनकी यह प्रक्रिया यहाँ भी सफल सावित
गये। तव स्टीनवोक ने यही को स्वार्थी और लोभी व्यापारियों से वचाने के
डी का अभाव था, अपनाया। भोजन की विटामिन डी की शक्ति वढाने की
हुई। तव स्टीनवोक ने जनता युक्त राज्य का पेटेण्ट नम्वर १६८०८१८ जो
उद्देश्य से, प्रकाशविम्बों द्वारा अपने नाम रजिस्टर कराया था, उसे उन्होने
क्रिया का पेटेण्ट ले लिया। के नाम कर दिया और इसकी आय शोध-
उन्होने २० जून, १९२४ व
विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय न को कई लाख डालर की आय रायल्टी (स्वत्व
प्रतिष्ठान को दे दी। क्योकि कितनी ही खाने की चीजें वनाने वाली
इस पेटेण्ट से शोध-प्रतिष्ठ का उपयोग करने लगी थी। इस आय से शोध
शुल्क) के रूप में होने लगी, । लगभग एक दर्जन अमेरिका के दूसरे विश्व-
कम्पनियाँ स्टीनवोक की विधि ड़ी आय को जो उन विश्वविद्यालयों के शोध-
कार्य को वढ़ावा दिया जाता है पेटेण्टों से प्राप्त होती है, शोधकार्य के प्रोत्साहन
विद्यालय स्वत्वशुल्क की इस : शोधकार्य में रत वैज्ञानिकों की यह व्यवस्था
कर्ता प्राध्यापको के अन्वेषणो के कारी और अच्छी है, फिर भी इसके विरुद्ध
में ही लगा देते हैं। अन्य अने अनुसंधान, समस्त मानव समाज की सम्पत्ति
सामाजिक दृष्टि से वड़ी लाभचित है।
आवाजें उठती है, कि विज्ञान के यों अमरीकी वैज्ञानिक जुटे। औषध-विज्ञान, शरीर
हैं और इनका पेटेण्ट करना अनुच-विज्ञान संबधी अन्वेषक वैज्ञानिको ने विटामिन-
विटामिनों की खोज में वीसि लिये। १९११ ई० मे सैंतालीस लेख लिखे गये,
विज्ञान, रसायन-विज्ञान तथा कृि शोध कार्य पर ही पन्द्रह सौ लेख प्रकाशित
के सम्बन्ध मे वड़ी सख्या मे लेख हे, कुत्ते, कबूतर और सूअरों की हत्या की
किन्तु १९३० ई० में विटामिन वेनाएँ की गयी, विटामिनों के पारस्परिक सम्व-
हुए और न जाने कितने हजार शरमोन के सम्बन्धों, साधारण उपापचयन के
गयी। हर प्रकार की नई प्रस्तावारीरिक स्वास्थ्य तथा पूर्णायु के साथ सम्वन्ध
न्ध के विपय में, इनकी और ह द्वारा मनोनीत एक समिति ने विटामिन की
साथ, संक्रामक रोगों, साधारण श निर्धारित कर दिये और विटामिनो के सत्व,
के विपय मे। लीग ऑफ नेशन्सरत कितनी ही प्रयोगशालाओ को मुफ्त वाँटे।
शक्ति के अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्ड कार्य मे जोरो से लग गया था।
विटामिन सम्वन्धी शोधकार्य में बड़े कारखाने और कम्पनियाँ भी इस ओर
सारा ससार विटामिन सम्वन्धी न्होने अपनी-अपनी खाद्य सामग्री की विटामिन-
तैयार भोज्य पदार्थ के बड़े
आकृष्ट हुई। विना परीक्षण के उ

वर्षों से चिकित्सकों ने श्वास, गठिया, मूर्च्छा, स्नायविक दुर्बलता, सर्दी, दिल की बीमारी, और जरा आदि के उपचार में विशेष प्रकार के भोजन पर बल दिया है। विटामिन के प्रचार से, भोजन द्वारा उपचार के कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। कई तरह के रोगों में अब विटामिन की गोलियाँ दी जाने लगी हैं। उदाहरणस्वरूप, पायरिया तथा रक्त-स्राव के उपचार मे विटामिन 'सी' की गोलियाँ दी जाती हैं।

जब बीसवीं शताब्दी का पूरा इतिहास लिखा जायगा, तब इसका उल्लेख होगा कि विज्ञान ने कैसे करोड़ों लोगो के भोजन में परिवर्तन किया। पुराना खयाल था कि पेट किसी तरह भरना चाहिए। भोजन के रासायनिक तत्त्व की परवाह नहीं की जाती थी। नया विचार अब यह है कि शरीर मे, स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक तत्त्वों को पहुँचाना चाहिये।

पौष्टिक आहार के नये विज्ञान की मदद से आज चार प्रकार के भयानक रोग मानव-समाज से हमेशा के लिये निकाल दिये गये है: बेरीबेरी, सूखा, बच्चो की स्कर्वी तथा पैलाग्रा। विज्ञान ने मनुष्य की औसत आयु पन्द्रह वर्ष बढा दी है और मनुष्य को पहले से अधिक लम्बा तथा सशक्त कर दिया है। मानव-इतिहास मे इस महत्त्वपूर्ण प्रगति का श्रेय अनेक अमरीकी वैज्ञानिको को है, जिनमे विशेषकर दो का योगदान क्रान्तिकारी है। ये वैज्ञानिक हरबर्ट मैक्लीन इवान्स और एलमर वरनन मैक्कोलम है।

इवान्स आज भी पीयूषग्रन्थि के अग्रभाग की अपनी परिकल्पना के साथ जूझ रहे है और अपने सहयोगियो के साथ इसके रहस्यो के उद्घाटन मे संलग्न है और उन्होंने विटामिन सम्बन्धी शोधकार्य ही बन्द नही किया है। मैक्कोलम अत्यधिक यश और कीर्ति तथा सम्मान के साथ १६४६ ई० में जॉन्स होपकिन्स विश्वविद्यालय के जीव-रसायन के प्राध्यापक के पद से सेवामुक्त हो गये। एक आँख एकदम खराब हो गयी है और दूसरी की ज्योति भी बहुत कम हो गयी है, फिर भी उन्होंने पौष्टिक आहार सम्बन्धी शोधकार्य का इतिहास लिखने की ठान ली। अपने ७८ वें वर्ष मे उन्होने यह कार्य भी पूरा कर दिया, जब कि हॉरमोन तथा विटामिन के रोमाचकारी क्षेत्र मे अब भी नये-नये अन्वेषण हो रहे है।

अध्याय ३

एडविन पॉवेल हुबल

(१८८९-१८५३)

अमरीकी विज्ञान के विशालकाय यंत्र और बड़े बड़े संस्थान

सब विज्ञानों में ज्योतिर्विज्ञान ही वह विज्ञान है, जिसका सबसे पहले अमेरिका में विकास हुआ। बहुत से पादरी यूरोप से आकाश-दूरबीन ले आये थे और बड़े उत्साह-उमंग से अपना खगोलीय मनोरंजन करते थे। परम पिता परमेश्वर और उसके विस्तृत आकाश की गौरव-गरिमा बताने के लिए अपने गिरजाघरों के भाषणों में वे ज्योतिर्विज्ञान की बातों का वर्णन करते थे। उपनिवेश के दिनों से ही ज्योतिर्विज्ञान का शौकिया अध्ययन करने वाले लोग इस विज्ञान में रस इस कारण लेते थे, क्योंकि यह समुद्र-यात्रा से बड़ी निकटता से सम्बद्ध है और उपनिवेशी अमरीकी लोगों के लिए समुद्र-यात्रा अनिवार्य थी।

१८२९ ई० में *नेथेनियल बाउडिच, इंगलैंड के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् जान* हरशल की सिफारिश पर रायल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के पहले अमरीकी सदस्य चुने गये। बीस वर्ष के उपरान्त हारवर्ड वेधशाला के प्रथम निदेशक विलियम बोन्ड इसी वैज्ञानिक संस्थान के सहयोगी बनाये गये। इसी अवसर पर रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी के अध्यक्ष ने कहा : "संयुक्त राज्य के अमरीकी, ज्योतिर्विज्ञान में यद्यपि देर से रुचि ले रहे हैं, फिर भी उन्होंने इस विज्ञान का अध्ययन अपने स्वाभाविक वेग और उत्साह के साथ आरम्भ कर दिया है और अब अपने गुरुओं को भी शिक्षा देने की अपनी योग्यता का उन्होंने परिचय दे दिया है।"

१८६० ई० में अमरीका ने संसार को बड़ी आकाश-दूरबीन के सर्वोत्तम निर्माता अलवेन क्लार्क को दिया और फिर दूसरी आकाश-दूरबीन के निर्माण में नये-नये कौशल के साथ दूसरे लोग भी आये। जान ब्राशीयर लोहे का काम करते थे, और फिर शीशा घिसने का काम करने लगे। उन्होंने यह सब छोड़-

थी। १६६५ ई० की भयंकर प्लेग के समय लन्दन के बाहर इन्होंने शरण ली थी और तभी इन्होंने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का पता लगाया, जिससे ब्रह्माण्ड भर के ग्रहों की रहस्यमय गति की स्पष्ट व्याख्या सम्भव हुई। गैलीलियो की सूक्ष्म बुद्धि भी इस रहस्य को नहीं सुलझा सकी थी।

और फिर बड़ी तत्परता और वेग के साथ उन असंख्य नक्षत्रों के अध्ययन के प्रयत्न हुए, जो ग्रहों के उस पार टिमटिमाते रहते हैं। इस अछूते क्षेत्र में संलग्न वैज्ञानिकों में सर्वश्रेष्ठ विलियम हर्शल थे जो युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए इंग्लैंड भाग आये थे। जीविकोपार्जन के लिए संगीत की शिक्षा देते-देते, पैंतीस वर्ष की अवस्था में वे ज्योतिष की ओर आकृष्ट हुए। वे जीवन भर शौकिया तौर पर आकाश के तारे ही देखते रह जाते, यदि १३ मार्च १७८१ को उन्होंने एक नये ग्रह यूरेनस का अन्वेषण न कर लिया होता। इस अन्वेषण से उन्हें यश मिला, इंग्लैंड के सम्राट् की कृपा प्राप्त हुई, और एक अत्यन्त धनी पत्नी मिली।

हर्शल ने बड़े-बड़े दर्पण स्वयं अपने हाथों से रगड़-रगड़ कर बनाये। १६ इंच के परावर्ती दूरदर्शक या दूरबीन की सहायता से हर्शल ने समूचे आकाश का ध्यान से अध्ययन किया और उन्हें सैकड़ों नये तारे एक साथ बहुत-बहुत पास-पास दिखायी दिये। १७८४ ई० में उन्होंने रॉयल सोसाइटी को बताया कि "यह आकाश-गंगा बड़ी दूर तक फैला हुआ तारों का स्तर है और हमारा सूर्य और समस्त सौरमण्डल आकाशगंगा का एक भाग ही है।"

गैलीलियो, कोपरनिकस तथा हर्शल का ताज ऐसे अन्वेषक ज्योतिर्विद् के सिर पर लगना था, जो आकाशगंगा के आगे भी जा सके। लेकिन पहले यह आवश्यक था कि पृथ्वी से इन नक्षत्रों की सही दूरी आँकी जा सके। यह कोई आसान काम नहीं था। आज सबसे निकट जिस नक्षत्र को हम जानते हैं, वह प्रोक्सिमा सेन्टारी है। जहाँ सूर्य पृथ्वी से केवल नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी पर है, वहाँ यह नक्षत्र पृथ्वी से कई खरब मील की दूरी पर है। प्रकाश की गति १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकेण्ड है और इस नक्षत्र का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में ४ वर्ष दो महीने से अधिक समय लेता है। इस लिए हम कहते हैं कि यह नक्षत्र पृथ्वी से ४२ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। इसी हिसाब से सूर्य का प्रकाश, पृथ्वी तक पहुँचने में आठ मिनिट लेता है। फिर भी यह नक्षत्र प्रोक्सिमा सेन्टारी हमारा निकटतम तारा है।

विलियम हर्शल की मृत्यु के सोलह वर्ष पश्चात् ज्योतिर्विज्ञान में एक विशेष प्रगति हुई। उनके पुत्र जॉन को फ्रेड्रिक बेसेल का एक पत्र मिला।

वह नही देखा । मुझे दीप्ति-ज्योतित गैस की तरह चमकीली एक हरी रे दिखायी पड़ी ।" किन्तु नीहारिका की कथा केवल इतनी ही नही है । यह पता चला कि अधिकतर नीहारिकाओं मे सूर्य की तरह ही सतत होता है । विलियम हर्शल ने इन्हे 'द्वीप की तरह के ये ब्रह्माण्ड' कहा और इन नीहारिकाओं मे अनगिनत तारे पाये गये, क्योकि तारा-गुच्छ भाँति ये भी सतत वर्णक्रम देती है । लेकिन इनमें से कुछ मे तारा-गुच्छ न बड़े आकार मे दीप्त गैस ही होती है ।

स्पष्टतः ये नीहारिकाएँ इतनी दूर है कि इनकी वास्तविक दूरी का लगाने का कोई साधन ही नही है । एक सौ प्रकाश-वर्ष से अधिक दूरी की के सम्बन्ध मे नक्षत्र-लम्बन कोई सूचना ही नही दे पाता । कोई दूसरी जो दूसरे ही सिद्धान्त पर आधारित हो, इसकी अत्यधिक आवश्यकता अन्ततः इस विधि की खोज विज्ञान की बहुत बड़ी विभूति बनी ।

आकाश मे विविध प्रकार के नक्षत्रों मे, जो सबसे अधिक विचित्र ता और जिसकी बाबत हम सबसे कम जानते है, वह सीफियड चरकाति तारा सीफियस तारामण्डल में अवस्थित, डेल्टा सेफाई नक्षत्र की ही तरह होने कारण इसका नाम सैफीयरीचर पडा । बहुत पहले ही यह देखा गया था कुछ अत्यन्त धूमिल तारे सहसा प्रकाशमान हो जाते हैं, इनकी ज्योति लगती है और ज्योति की तीव्रता शिखर पर पहुँच कर फिर ये धीरे-धीरे धुँ पड जाते है । प्रकाश के घटने-बढने की अवधि कुछ दिनो से लेकर एक और कभी-कभी पचास दिन तक होती है ।

१६१२ ई० मे कुमारी हेनरियाटा एस० लियाविट ने एक बहुत बडी ख की । ये रेडक्लिफ कॉलेज की स्नातक थी और हारवर्ड कालेज की वेधशाला सहायिका के रूप मे कार्य कर रही थी । नक्षत्रो और नक्षत्र-गुच्छों की जा कारी प्राप्त करने के लिए आकाश के विविध भागों की फोटो ले ली गयी और कुमारी हेनरियाटा इन फोटो-चित्रो का बहुत समय से अध्ययन कर र थी । आकाश-गगा के नजदीक ही, जहाँ बहुत-से सीफियस के होने की थी, एक तारागुच्छ के फोटोचित्रो को देखते हुए, इनकी अभ्यस्त कुशल आँ को एक असाधारण दृश्य दीख पडा । इन चित्रों मे उन्होने देखा कि लाखो त के बीच मे इन बडे, चमकदार सीफियड का प्रकाश धीरे-धीरे घटता-बढ़ता और छोटे, कम चमक के सीफियड के प्रकाश की घट-बढ तेज होती है ज्यादा चमकदार सीफियड अपनी ज्योति के शिखर पर पहुँचने में ज्यादा लेते थे और फिर धुँधले पड जाते थे । और लोगों ने भी ये चित्र देखे थे, लेकि

उनकी आँखो ने इस घटना के दर्शन नही किये, वह असाधारण बात नही देखी, जो इस महिला ने देखी।

कुमारी लियाविट ने सैकड़ों फोटोचित्रों का वड़ी सावधानी से अध्ययन आरम्भ किया। इन प्राप्त तथ्यो से उसे विश्वास हो गया कि किसी सीफियड के स्पन्दन की अवधि इसकी चमक से, ज्योति से सम्बन्धित है और उन्होंने अवधि-ज्योति सिद्धान्त की अपनी खोज की घोषणा की। उन्होने कहा कि सीफियड की ज्योति घटने-बढ़ने की अवधि इसके अपने प्रकाश के अनुपात मे ही है। इस तरह किसी नक्षत्र की दिखाई पड़ने वाली ज्योति उसका अपना वास्तविक प्रकाश नही भी हो सकता है क्योकि किसी नक्षत्र का दिखाई पडने वाला प्रकाश इस बात से सम्बन्धित है कि दर्शक से यह नक्षत्र कितनी दूर पर है। नक्षत्र जितनी दूर होगा, उतना ही धुँधला दिखायी पडेगा। इसी तरह से यदि किसी सीफियड के प्रकाश की घट-बढ किसी उतनी ही दूरी के दूसरे सीफियड से ज्यादा वेग से हो तो उसका अपना वास्तविक प्रकाश अपने पड़ौसी के प्रकाश से कम है।

इस सिद्धान्त की खोज का महत्त्व स्पष्ट है। यदि यह हर प्रकार से सही हो तो तारों की दूरी की समस्या का यह सरल निदान हो सकता है। कल्पना कीजिये कि दो सीफियड है जिनकी ज्योति की घट-वढ़ की अवधि समान है, अर्थात् एक बराबर समय मे दोनो सहसा प्रदीप्त होकर अपनी ज्योति के शिखर पर पहुँचते है और फिर धुँधले हो जाते है। और फिर यह भी कल्पना कीजिये कि इन दोनों मे से एक की ज्योति दूसरे से १०० गुनी तीव्र है। तो एक सीफियड दूसरे से दस गुनी अधिक दूरी पर है, क्योंकि जैसा हर विद्यार्थी जानता है प्रकाशपुंज की तीव्रता अपनी दूरी के वर्ग के प्रतिलोम के अनुसार बदलती है (१००=१०^{२})। यदि इनमे से एक सीफियड ऐसी व्यवस्था का अग हो जिसकी दूरी हमें मालूम है, जैसे आकाश-गंगा, तो उसकी दूरी का पता हमें चल सकता है। और अन्त में इस नक्षत्र व्यवस्था की दूरी वही होगी जो इस सीफियड की है, जिसकी ज्योति की घट-वढ़ का ज्ञान हम कर सकते है। यह एक नितान्त नया ढंग है जिसका उपयोग हम तारों की ज्योतिष के निमित्त कर सकते हैं। यह एक विल्कुल नया माप-दण्ड प्राप्त हो गया, और एक गहन समस्या पर से मानो पर्दा उठ गया।

लगभग इसी समय एक जीव-वैज्ञानिक और पत्रकार माउण्ट विल्सन की साठ इंच की दूरबीन से ज्योतिर्विज्ञान मे शोधकार्य कर रहे थे। हार्लो शेपली दर्जनों गोल तारा-गुच्छों का जो हमारी आकाश-गगा के अश होते हुए

भी अनग स्थित थे, अध्ययन कर रहे थे। आकाश-दूरबीन से उन्हें पता चला कि कुछ तारा-गुच्छों मे, पंतीस हजार नक्षत्र थे। उसी समय, जब कुमारी लियाविट ने सीफियड के महत्त्व की बात बतायी, शेपली भी इन तारा-गुच्छों मे इन सीफियड की तलाश कर रहे थे और बहुतों का इन्होंने पता भी लगा लिया था।

अनेकों परीक्षणों के बाद १६१७ ई० में उन्होंने कई तारागुच्छों की ज्योति की अवधि निकाल ली थी और इस तरह सीफियड से इनकी दूरी का पता लगा लिया था। पहले केवल सापेक्ष दूरी मालूम होती थी। अब शेपली ने कुमारी लियाविट के नियम का साधारणीकरण कर दिया।

शेपली ऐसे ब्रह्माण्डो की तलाश मे थे जो केवल ढाई लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर हों। १६२५ के लिए यह दूरी बहुत नजदीक मानी जाती थी। आकाश मे और बहुत से ब्रह्माण्ड सतरण कर रहे थे, जिनके प्रकाशबिम्ब इंगित करते थे, उन साहसी अन्वेषकों को जो उस समय के जाने-पहचाने स्थलों के पार, अन्धकारमय अन्तर्नक्षत्रीय शून्य के महासागर मे प्रवेश करें। जल-पोत तैयार था, सौ-इंच की आकाश-दूरबीन जिसे अमेरीकी जॉर्ज एलेरी हेल ने बनाया था।

हेल ने स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफ ईजाद किया और १८६१ ई० मे इस यत्र द्वारा सूर्य की एक पहाड़ी का पहला सफल चित्र खीचा और सिद्ध किया कि सूर्य के धब्बे वे स्थान है जहाँ चुम्बकीय और विद्युज्जनित विकराल बवडर हैं। वे पासाडेना मे एक सौर-वेधशाला के लिए स्थान निश्चित करने गये। अपने प्रयत्नों तथा कारनेगी सस्थान की आर्थिक सहायता से माउण्ट विल्सन की विशाल वेधशाला वास्तविक रूप ले सकी।

नये-नये विश्वो की खोज मे चल पड़ने वाले ज्योतिष के कोलम्बस, एड-विन हुबल थे। राबर्ट मिलिकन की सिफारिश पर शिकागो विश्वविद्यालय ने हुबल को एक बड़ी छात्रवृत्ति दी। यहाँ आकर वे अपने भौतिकी के शिक्षक मिलिकन के प्रभाव मे आये और हेल से उन्हे अत्यधिक प्रेरणा और मार्गदर्शन मिला। सभी विषयों से अधिक ज्योतिर्विज्ञान में उनकी रुचि हुई। दूसरे नम्बर पर गणित था। इक्कीस वर्ष की अवस्था मे हुबल की कुशाग्रता ने उन्हे रोड्स-विद्वान् के रूप मे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय पहुँचा दिया। कुछ समय के लिए उन्होंने वैज्ञानिक शोध का कार्य छोड़ दिया। ऑक्सफोर्ड मे उन्होंने कानून का अध्ययन किया और संयुक्त राज्य लौटकर केन्टुकी मे अपना दफ्तर खोल लिया। यहाँ वे एक वर्ष तक वकालत करते रहे। फिर सहसा कानून से

ऊबकर उन्होंने आकाश के विधान को समझने के लिए यरकिज़ वेधशाला मे प्रवेश किया। ज्योतिष मे डाक्टर की उपाधि के लिए शोधकार्य करते हुए उन्होंने अपने १६१६ ई० मे प्रकाशित एक.लेख "धुँधली नीहारिका के चित्रों का परीक्षण" मे अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया।

१६१६ ई० में हुबल ने माउण्ट विल्सन वेधशाला मे प्रवेश किया और वहाँ पहुँचकर हजारो नीहारिकाओ का गहन अध्ययन आरम्भ कर दिया। सबसे निकटस्थ नीहारिका को साधारणतया आँखों से देखने पर चन्द्रमा से कुछ छोटे, धूमिल बादल की तरह देखा जा सकता है। इसकी ज्योति चौथे या पाँचवें दर्जे के कान्तिमान नक्षत्रो के बराबर है। उन्होने सबसे पहले मेजियर-३१, एण्ड्रोमेडा नक्षत्र-मण्डल की सर्पिल नीहारिका की ओर ध्यान लगाया। उन्होने मेज़ियर-३३ का भी अध्ययन किया।

मेज़ियर-३१, पृथ्वी से ज्ञात दूरी के अन्य तारो से कई गुना कम चमकदार दिखायी पड़ा। हुबल ने सीफियड चर की सफलतापूर्वक खोज की और एक दर्जन का पता लगा लिया, जो आकाशगगा के अन्य तारों की तरह घटती-बढ़ती अवधि के थे। फिर उन्होने ज्योति-अवधि के नियम द्वारा उनकी वास्तविक ज्योति की गणना की, और देखा कि हमारी आकाशगगा के सूर्य से, चार हज़ार गुना अधिक बड़े है। इस गणना द्वारा उन्होने यह घोषित किया कि मेज़ियर-३१ हमसे नौ लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर, हमारे नक्षत्र मण्डल, हमारी आकाश-गगा से भी बहुत बाहर है।

अब जब यह मार्ग खोज निकाला गया तो फिर बड़े उत्साह, बड़ी क्रियाशीलता के साथ आकाशगंगा के पार के ब्रह्माण्डों का पता लगाया जाने लगा। १००-इची, ६०-इची तथा अन्य बड़ी आकाश दूरबीनें इन नये ब्रह्माण्डो की तलाश करने लगी। सैकड़ो नीहारिकाओ का विश्लेषण कर उनको नक्षत्रो, गैसों, धूल के बादलो का रूप दे दिया गया। जैसा कि हर्शेल ने कहा था—"मानो ये आदिकालीन दुर्व्यवस्थित ज्योति की धारा हों।" इनमे सीफियड अक्सर मिल जाते थे, और कभी-कभी चमकदार प्रकाश के बिन्दु नव तारे भी, जिनकी ज्योति सूर्य से एक लाख गुना अधिक है और जो न जाने कहाँ से निकल पड़ते है, आकाश पर एक दृष्टि डाल कर फिर थकान या शोक मे, फिर कभी दिखायी न देने के लिये डूब जाते है।

बहुत बड़ी मात्रा मे नई जानकारी मिलती रही। कोई नहीं बता सकता कि इन तथ्यो और गणनाओं का कहाँ अन्त होगा। एकाएक इन सब शोध-कार्यों में से एक आश्चर्यजनक ऐसी खोज सम्भव हुई जो विज्ञान के इतिहास में

अब तक सबसे महत्त्वपूर्ण है। दूरबीनों द्वारा तथा फोटो चित्रों के माध्यम से जितनी दूर तक देखना सम्भव है, उससे यही मालूम पड़ता है कि हमारी आकाशगंगा के पार ब्रह्माण्डों का जो परिवार है वह इस धूल के कण के बराबर पृथ्वी से दूर, तेजी से भागा जा रहा है। सभी नीहारिकाएँ मानो बड़ी भयंकर गति से आकाश के दूरतम छोरों की ओर भाग रही हैं। पानी के बबूले की तरह विशाल मन्दाकिनी का आकार बढ़ रहा है, और इसके बढ़ने की रफ्तार इतनी तेज है कि प्रत्येक १४० करोड़ वर्षों मे इसका व्यास दुगना होता जायगा। बिजली की कौंध की तरह ससार को यह अनुभव हुआ और सहसा प्राप्त इस ज्ञान ने मानो विज्ञान को झकझोर दिया। इस बड़े, नये ज्योतिष के तथ्य का सामना करने के लिये विज्ञान अक्षम था। इस तथ्य को किसी भी सर्वसम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा ग्रहण करने की शक्ति नहीं थी। यह वैज्ञानिक तथ्य बडा रोमाचकारी, भयावह तथा दिल दहलाने वाला था।

इस नयी समस्या के क्षेत्र में हुवल अग्रणी थे। उनके प्रधान सहायक मिल्टन हुमसन थे, जिन्होंने चौदह वर्ष की अवस्था मे विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर ली थी। वे कैलिफोर्निया के बैंकर के पुत्र थे और उन्होंने विधिवत् अपनी शिक्षा पूरी की थी। उन्हे पाठशाला से, विद्यालय के पाठ्यक्रम से बड़ी चिढ थी और अरुचि भी। पासाडेना की सड़कों से माउण्ट विल्सन की चोटी दिखायी पड़ती थी और हुमसन उसकी ओर आकृष्ट हुए। वे पहाड़ पर चढ कर ऊपर पहुँचे और वहाँ वेधशाला के निकट ही एक होटल मे काम करने लगे। होटल में वे तरह-तरह के काम किया करते थे। वेधशाला के लिये मशीनों के पुर्जे आदि तथा अन्य सामान गधों पर लादकर पहाड के ऊपर लाने का काम करते। कभी वेधशाला के घडी-घर मे कुछ काम करते और कभी वेध-शाला के बड़े ऊँचे टावर मे लगी दूरबीन के पास फोटो चित्रों के बनाने में सहायता करते। इस तरह काम करते-करते उन्होंने अपने को वेधशाला के लिये इतना आवश्यक बना लिया कि १९२२ मे उन्हें वेधशाला की नौकरी में ले लिया गया और बड़ी दूरबीन से नक्षत्रों के अध्ययन का अवसर दिया गया।

हुवल ने जब पहली बार निश्चयपूर्वक यह पता लगा लिया और घोषणा कर दी कि हमारी आकाशगंगा के उस पार और भी मन्दाकिनियां है, तब हुवल और हुमसन ने मिलकर एक दूसरी समस्या की ओर ध्यान लगाया। यह समस्या एरिजोना, फ्लैगस्टाफ की लोवेल वेधशाला के एक ज्योतिर्विद् ने प्रस्तुत की थी। वेस्टो स्लिफर, सर्पिल नीहारिकाओं की गतिका अध्ययन वर्ण-क्रमीय विश्लेपण द्वारा कर रहे थे। लवन-पद्धति द्वारा किसी तथ्य का ठीक-

ठीक पता नहीं लग पा रहा था। गतिशील वस्तुओं के वर्णक्रम के माध्यम से खोज का कार्य सम्भव प्रतीत होता था। इस नई पद्धति के प्रयोग की कहानी १८४१ में एक दिन आरम्भ हुई जब क्रिश्चियन डॉप्लर नामक प्राग के एक वैज्ञानिक ने 'डॉप्लर प्रभाव' का पता लगाया। इस तथ्य को प्रमाणित कर देने के पश्चात् कि ध्वनि का तारत्व, ध्वनिकारक वस्तु के श्रोता की ओर बढ़ने से, तीव्रतर होता जाता है, उन्होने यह सिद्ध किया कि यह 'डॉप्लर प्रभाव' अथवा आवृत्ति (फ्रीक्वेन्सी) का परिवर्तन प्रकाश के मामले मे भी उसी तरह होता है। प्रकाश में रंग की वही स्थिति है, जैसी ध्वनि मे तारत्व की।- दृश्य प्रकाश की न्यूनतम आवृत्ति लाल रंग की होती है। दृश्य प्रकाश के वर्णक्रम के दूसरे छोर पर बैंगनी रंग की आवृत्ति उच्चतम होती है। इसलिए ज्योतिष्मान पदार्थ जब द्रष्टा की ओर बढता है तो उसके प्रकाश की आवृत्ति उच्चतर होती जाती है। दूसरे शब्दों मे यह प्रकाश लाल रंग से आरम्भ होकर धीरे-धीरे बैंगनी रंग में बदलता जायगा। परिवर्तन का यह अन्तर ही वह मापदण्ड होगा जिससे प्रकाशमान पदार्थ की द्रष्टा की ओर या उससे दूर हटने की गति निश्चित करेगा। इसी पद्धति द्वारा स्लिफर ने यह पता लगाया कि कुछ सर्पिल नीहारिकाएँ बड़ी ही तीव्र गति से दौड रही है। १९२८ तक उन्होने ४३ अधिक चमकवाली और अपेक्षाकृत निकट की नीहारिकाओ के गति-सम्बन्धी तथ्यों से पता लगाया कि ये सभी सर्पिल नीहारिकाएँ तीव्र गति से पृथ्वी से दूर भागी जा रही है। उन्होंने अपने तथ्यों, तथा अपनी गणना के महत्त्व को नही समझा। लेकिन हुबल ने नीहारिकाओं की उलटी दिशा में जाने की गति और पृथ्वी से उनकी दूरी में एक विचित्र पारस्परिक सम्बन्ध का पता लगाया। कैलिफोर्निया के इस वैज्ञानिक ने यह खोज की कि नीहारिकाओं के उलटी दिशा में भागने की गति जो वर्णक्रमीय रेखाओं की लाली मे परिलक्षित होती है, वह लालिमा पृथ्वी से इन नीहारिकाओं के अधिक दूर हो जाने से गहन हो जाती है। अधिक दूरस्थ नीहारिका की गति निकट की नीहारिका की गति से बहुत अधिक होती है।

हुबल ने यह अनुभव किया कि इस सम्बन्ध के बारे में फौरन प्रामाणिक परीक्षण होना चाहिए। और यह परीक्षण केवल आकाशगंगा के पार उन नीहारिकाओं तक ही सीमित नही होना चाहिए जिन्हें उन्होंने बड़ी दूर आकाश के कोनो में खोज निकाला था परन्तु ये परीक्षण महाशून्य में जहाँ तक यंत्रों द्वारा पहुँचा जा सके, यहाँ तक के सभी ज्योतिर्पिण्डों के विषय में हों। पहले तो यह आवश्यक था कि आकाशगंगा के पार की नीहारिकाओं की दूरी का, सैफीयरीवर द्वारा प्रदत्त तथ्यों के आधार पर नयी पद्धति की सहा-

यता से पता लगाया जाय। यह हुवल का ही काम था। इसके बाद आवश्यक था कि वर्णक्रमलेखी द्वारा इनकी वर्णक्रमीय रेखाओं की लालरग की ओर बढ़ने की क्रिया को निर्धारित किया जाय। यह कार्य उन्होंने हुमासन को सौंप दिया।

अत्यन्त दूरस्थ नीहारिका के वर्णक्रम का अंकन अत्यन्त कठिन कार्य था। हुमसन को हजारो प्रकाश-विन्दुओ के बीच किसी एक प्रकाशविन्दु के तुल्य, नीहारिका पर अपने वर्णक्रम-लेख को दूरवीन के साथ अत्यन्त सावधानी से लगातार लगाये रखना पड़ता था। विस्तृत आकाश मे एक धुंधले प्रकाश-विन्दु को रात भर देखते रहना पड़ता था। और रात के खत्म होने पर जब उषा की किरणें फूटती थी तो फोटोचित्र के प्लेट को ढक कर रखना पड़ता था और फिर रात मे उसी प्रकाश-विन्दु को फिर दूरवीन और वर्णक्रमलेख की पकड़ मे लाना पड़ता था। किसी भी एक नीहारिका के पूरे फोटोचित्र लेने मे पचहत्तर घटे लगते थे, जिसका अर्थ हुआ आठ से दस रात।

ये फोटोचित्र फिर वेधशाला मे धोये जाते थे। नीहारिका के वर्णक्रम की सूर्य से तुलना की जाती थी और कुछ विशेष वर्णक्रमीय रेखाओं के रंगो मे यदि तनिक भी परिवर्त्तन हो तो उसको ध्यानपूर्वक सावधानी से अकित कर दिया जाता था। इस तरह यह बहुत सावधानी का कार्य था। हुमसन को उन छोटे-छोटे चित्रों का अध्ययन-परीक्षण करना पड़ता था जो केवल १/१० इंच लम्बे तथा ३/१० इच चौडे थे और इन पर प्रकाश की सघन रेखाएं अकित थी, नीहारिका के उस प्रकाश की, जो दस करोड़ वर्ष पहले वहाँ से उद्भूत हुई थी।

हुवल इस तरह लाल रग की गहराई द्वारा नीहारिका की स्थिति और पृथ्वी से इसकी दूरी निर्धारित करते थे। फिर ये उस नीहारिका की पृथ्वी से दूर जाने की गति निश्चित करते थे। इस कार्य मे उन्हें बड़ी सावधानी, सतर्कता से दत्तचित्त होकर अथक परिश्रम करना पड़ता था। और इस कार्य के करने मे उन्हें बडे रोमाच और आनन्द की अनुभूति होती थी। सभी लोग बड़ी उत्सुकता से गति-निर्धारण की प्रतीक्षा करते थे। हुमसन ने कहा, "हम अपनी गणना मे व्यस्त रहते थे और जब किसी नीहारिका का वेग निश्चित हो जाता था तो वैसा ही आनन्दातिरेक होता था जैसा किसी नये ग्रह की खोज से होता है।" किन्तु प्रत्येक चित्र मे रग धीरे-धीरे लाल रग की ओर ही आते नजर आते थे। सभी नीहारिकाएं पृथ्वी से दूर भाग रही थी और बड़े वेग के साथ। इसके अतिरिक्त यह दूरी और वेग के सम्बन्ध का सिद्धान्त आकाशगगा के दूरतम महाशून्य मे भी सत्य साबित होता था।

महाशून्य के दूरतम भागों के निरीक्षण-अध्ययन के परिणाम हुबल और हुमसन ने ग्राफ पेपर पर अंकित किये। एन० जी० सी०-३८५ पेगासस की आकाशगंगा दो करोड तीस लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर थी और २४०० मील प्रति सैकेण्ड के वेग से चल रही थी। एक धुँधले प्रकाश की मन्द ज्योति, एन० जी० सी०-४८४४ कोमा बरनेसियो की आकाशगंगा, जो चार करोड पचास प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है, चार हजार सात सौ मील प्रति सैकेण्ड की रफ्तार से पृथ्वी से दूर भाग रही है। उर्सा मेजर तारागुच्छ नम्बर दो, पृथ्वी से जिसकी दूरी आठ करोड़ पचास लाख प्रकाश-वर्ष है, और भी अधिक वेग, नौ हजार पांच सौ मील प्रति सैकेण्ड की गति से पागलो की तरह भाग रहा है। लियो नामक तारा-गुच्छा जिसका अन्वेषण १९३० ई० मे हुआ, पृथ्वी से दस करोड़ पचास लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। और यह तारा-गुच्छ बारह हजार मील प्रति सैकेण्ड की अकल्पनीय गति से महाशून्य को चीरता हुआ भाग रहा है। बूट्स नामक तारा-गुच्छ की एक मन्दाकिनी, जिसका अन्वेषण हुबल ने १९३४ ई० मे किया, महाशून्य के दूरतम अप्रवेश्य भाग में है और इस मन्दाकिनी का वेग और भी अधिक है, फट पडने की २४००० मील प्रति सैकेण्ड की गति।

किसी भी खोज के कारण शायद ही इतना बड़ा वाद-विवाद उठ खडा हुआ हो जितना हुबल की इन खोजो के कारण हुआ। ब्रह्माण्ड का भौतिक तत्त्व और आकार सदा ही विज्ञान की आधारभूत समस्या रही है और विज्ञान के मनन का सर्वदा विषय रहा है। इस सम्बन्ध में बहुत से मत प्रकट किये गये किन्तु प्रामाणिक तथ्यों के अभाव मे किसी भी मत के सर्वसम्मति द्वारा स्वीकृत किये जाने मे बड़ी अड़चन थी। किन्तु अब एक दम एक नया सिद्धान्त ही सामने आया—एक ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड निरन्तर बढ़ रहा है और महाशून्य, आकाश में तीव्रता के साथ, बड़े वेग से नीहारिकाएँ पृथ्वी से दूर भाग रही हैं।

यद्यपि आइन्स्टाईन ने स्वयं घोषणा की थी कि रगों का परिवर्तन अर्थात् रगो का लालिमा मे परिणत होना, गति के वेग का परिचायक मानना तर्कसगत मालूम पड़ता है, तो भी हुबल ने और भी विशेष परीक्षणों द्वारा यह जानने की आशा की कि यह गति का वेग वास्तविक है अथवा केवल दिखाई ही पड़ता है। उनका विश्वास था कि रगो का लालिमा मे बदलना या तो वास्तविक गति के कारण है या इसका भौतिकी के नियम से कोई सम्बन्ध है, जिसका हमे ज्ञान नही। हुबल का विश्वास था कि सावधान परीक्षक किसी भी व्याख्या का निश्चयपूर्वक, आग्रहपूर्वक प्रतिपादन नही करता, और ब्रह्माण्ड

की इस क्रिया को सावधानी के साथ केवल दिखायी पड़ने वाली गति ही कहता है।

हुवल ने इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया कि ज्योतिष का प्रधान कार्य यह होना चाहिए कि विविध प्रकार की आकाशगंगाओं के वर्गीकरण को व्यवस्थित कर दिया जाय। यह उनके तथा उनके सहयोगियों के लिए जीवन भर का काम था। हुवल ने आकाशगंगा के उस पार की सभी मन्दाकिनियों को तीन मोटे वर्गों में बाँट दिया—सर्पिल मन्दाकिनी। पहले प्रकार की जैसे एम-३१ जो केन्द्र में गोलाभ है और चौड़ी तश्तरी की तरह इस केन्द्र के चारों ओर फैली है और इस तश्तरी के दो ओर सर्पिल आकार के हाथ जुड़े हुए हैं। दूसरे वर्ग की आकाशगंगा, जैसे एम-३२, का दीर्घवृत्तीय आकार-प्रकार है और इसमें तारों का समूह है जो केन्द्र की ओर अत्यन्त सघन है। मैंगालैनिक बादल विषम प्रकार की आकाशगंगा के उदाहरण है। इस महत् परीक्षण के कार्य में हजारों फोटोचित्र लिये गए।

भौतिक ब्रह्माण्ड के आकार तथा शरीर-रचना के सम्बन्ध में कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हुवल ने हालैण्ड के श्री जे० सी० केप्टीन की एक योजना का अनुकरण किया। एक दशक पूर्व ही केप्टीन ने आकाश के किसी एक सुनिश्चित भाग के तारों का साख्यिकीय अध्ययन आरम्भ कर दिया था और इस अध्ययन द्वारा जो निष्कर्ष निकलता था, उसके आधार पर वे समस्त ब्रह्माण्ड की प्रकृति, रचना आदि के सम्बन्ध मे मत स्थिर करते थे। हुवल ने माउण्ट विल्सन के पहाड पर से दिखायी पड़ने वाले आकाश के अत्यन्त छोटे सुनिश्चित भाग के १२८३ फोटोचित्र लिये। महाशून्य के अन्तरतम भाग के, जहाँ तक भेदन करना सम्भव हुआ, फोटोचित्रो ने ४४००० अलग-अलग आकाशगंगाओं की स्थिति की सूचना दी। उनकी गणना के अनुसार यह संख्या सात करोड़ पचास लाख अलग-अलग ब्रह्माण्डो के बराबर हुई और ये ब्रह्माण्ड केवल आकाश के उतने स्थान मे ही स्थित थे, जितने को विल्सन की एक सौ इंची आकाश-दूरबीन से देखा जा सकता था, क्योकि समूचे आकाश का केवल सौवाँ भाग ही इसके द्वारा दृश्य था। इसलिए सभी ब्रह्माण्डो की अनुमानित सख्या की कल्पना की जा सकती है।

हुवल ने यह अन्दाज़ा लगाया कि दो आकाशगंगाओं के बीच बीस लाख प्रकाश-वर्षों की दूरी है। एक साधारण आकाशगंगा का व्यास १५ हजार प्रकाश वर्ष है। और इसमे एक अरब तारे होते है। प्रत्येक आकाशगंगा की ज्योति हमारे सूर्य से लगभग आठ करोड़ पचास लाख गुना अधिक होती है। हुवल

नियम के प्रतिकूल था। कैलिफोर्निया के ज्योतिर्विदों के परीक्षणों द्वारा प्राप्त
तथ्यों को जानकर आइन्स्टाईन अपने स्थिर ब्रह्माण्ड को तोड कर टुकडे-टुकडे
कर देने को तैयार थे। गणित और भौतिकी के इस सर्वश्रेष्ठ विद्वान् ने स्वीकार
किया कि उनके द्वारा प्रस्तुत समीकरण शिरोधार्य नहीं मानना चाहिए।
गणित कोई स्वर्णमूर्ति नहीं है कि उसकी पूजा की जाय और न यह आवश्यक
है कि विशेषज्ञों के चरणों मे पूजा के फूल चढ़ाये जायें।

ब्रह्माण्ड के चित्रों के नक्शों, कल्पित मूर्तियों के पुनर्गठन की फौरन आव-
श्यकता थी। यह स्वाभाविक ही था कि यह मूर्तिकार पासाडेना में मिले जहाँ
हुबल, हेल, मिलिकन और अनेक सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक विज्ञान के बडे-
बडे विद्वान् मिलकर गोष्ठी करते थे और हुबल के विस्मयकारी अन्वेषणों के गूढ
अर्थ का विवेचन करते थे। इन गोष्ठियों में सम्मिलित होकर बड़े चाव, लगन
के साथ विचार करने वाले भौतिक-रसायन तथा गणित-भौतिकी के प्राध्यापक
तथा कैलिफोर्निया वैज्ञानिक संस्थान के अध्यक्ष रिचर्ड टॉलमैन थे।

बहुत पहले १९०७ ई० मे टॉलमैन, आइन्स्टाईन के सापेक्षता के सिद्धान्त के
आकर्षक जाल मे फँस गये और दस वर्ष उपरान्त उन्होने 'गति की सापेक्षता
के सिद्धान्त' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की। १९२७ ई० में काल्टेच आने के छः
साल बाद उनकी पुस्तक 'सांख्यिकीय बल विज्ञान' प्रकाशित हुई जिसमे उन
नियमो की व्याख्या की गई थी जो कई अणुओं वाले तन्त्रो के समग्र व्यवहार
का प्रतिपादन करे, यदि हमें उनके अलग-अलग तत्त्वों के सही व्यवहार व प्रति-
क्रिया का ज्ञान न हो।

पहाड़ पर की हुबल और हुमासन की ज्योतिषीय खोजोंकी सूक्ष्मता के प्रति
टॉलमैन का आकर्षण आरम्भ से ही था। काल्टेच की प्रयोगशाला के कमरा
न० ५ मे अपने को बन्द कर और अपने पाइप के धुएँ में घिरे रहकर टॉलमैन
ने कागज पर पैंसिल चलाना शुरू किया। उनका तरीका आइन्स्टाईन का सा ही
था। उन्होने एक कागज पर एक बड़ा समीकरण नोट किया। यह समीकरण
ब्रह्माण्ड के आदर्शवादी स्वरूप का गणितीय निरूपण था। गणित की कुछ
कठिनाइयों के कारण और कुछ परीक्षण के द्वारा प्राप्त तथ्यों के अभाव में
उनके समीकरण ने एक अत्यन्त आदर्शवादी महत् ब्रह्माण्ड का रूप उपस्थित
किया। वे अपने समीकरण को बदलते रहे। कभी वे गणित का कोई नया
चिह्न जोड़ते, कभी किसी चिह्न को काट कर उड़ा देते, कभी किसी अंक का
बल बदल देते और इस तरह अपने समीकरण का रूप बदलते रहे, ज्यों-ज्यों
नये विचार, नयी व्याख्याएँ उनके दिमाग में आती गयीं उनकी पैंसिल की

नोक पर नये-नये ब्रह्माण्ड बनते-बिगड़ते रहे। कई फार्मूलों से भरे किसी कागज के फाड़ दिये जाने पर न जाने कितने ब्रह्माण्ड नष्ट-भ्रष्ट होते रहे।

१६२६ ई० में टॉलमैन आखिर जब अपने इस एकान्तवास को छोड़कर बाहर निकले तब उनके सामने से मानो पर्दा हट चुका था और उन्हें नयी दृष्टि प्राप्त हो गयी थी। उनके सामने समीकरण में ब्रह्माण्ड का वह अस्थिर सतत चलायमान रूप था जो हुवल के निष्कर्षों से मेल खाता था। उनका ब्रह्माण्ड करोड़ों अरबों ताराओं, तारा-गुच्छों, ग्रहों, शून्य, महाशून्य, धूल तथा अस्त-व्यस्तता का दृश्य नहीं देता था। यह एक गणित के समीकरण का बड़ा साहसपूर्ण सार था। इनका समीकरण आइन्स्टाईन अथवा द सिटर के समीकरण से भिन्न नहीं मालूम पड़ता था। उन्ही गणित के चिह्नों का प्रयोग किया गया था किन्तु उनके समीकरण में कुछ ऐसा परिवर्तन था जिससे उनका ब्रह्माण्ड आइन्स्टाईन की स्थिरता लिए हुए न होकर समय की गति के साथ परिवर्तनशील था और जो द सिटर के ब्रह्माण्ड की तरह शून्यमय न होकर पदार्थ द्रव्यमय था।

टॉलमैन ने गणित के समीकरण द्वारा ब्रह्माण्ड रचना के प्रयत्नों के विषय मे बहुत काफी अध्ययन किया था। किन्तु जैसा बहुत सम्भाव्य है, उन्होंने इस विषय पर लिखे कुछ पुराने लेखों को नहीं पढ़ा था। विज्ञान की राष्ट्रीय महासमिति के सम्मुख अपने लेख को पढ़ने के कुछ महीने पहले ही प्रिंसटन विश्वविद्यालय के हावर्ड रोबर्टसन जो १६४७ ई० से कैलिफोर्निया के टैक्नोलोजी के संस्थान में गणित भौतिकी के प्राध्यापक हो गये थे, टॉलमैन के समीकरण से मिलता-जुलता अपना समीकरण प्रकाशित कर चुके थे। सात वर्ष पूर्व रूस के अत्यन्त मेधावी गणित के आचार्य एलेक्जेन्डर फ्रीडमैन ने आइन्स्टाईन के समीकरण में एक अशुद्धि की ओर निर्देश किया था और बताया था कि गणित द्वारा दो अस्थिर ब्रह्माण्डों की रूपरेखा निश्चित की जा सकती है। टॉलमैन के प्रमुख समीकरण के प्रकाशन के बाद जब उनका ध्यान पहले के प्रकाशित इन लेखों की ओर दिलाया गया तो टॉलमैन ने फौरन इन पूर्व प्रकाशित लेखों को निकालकर पढ़ा और इनके पहले ही किये गये शोध-कार्य की सराहना की। उन्होंने इनकी बाबत लिखा : "फ्रीडमैन के लेख पर वैज्ञानिकों के समुचित ध्यान न देने के बावजूद, ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विज्ञान में एक नया अध्याय जोड़ने का श्रेय इनको प्राप्त होना चाहिये।" टॉलमैन विज्ञान के अग्रणी नहीं थे।

लोवें विश्वविद्यालय के एक नवयुवक पादरी एबी जोर्जेज लमारतर ने १६२७ ई० में पहली बार पदार्थों पर गणित के समीकरण का प्रयोग किया

था। लमारतर ने फ्रीडमैन के समीकरण का अध्ययन किया और ज्योतिषीय तथ्यो पर उनकी अस्थिर रेखा का प्रयोग किया। उन्होंने एक बड़ी खोज यह की कि निकट की आकाशगगा के प्रकाश की लालिमा की व्याख्या सतत विकासशील ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त द्वारा की जा सकती है। उनकी खोज के एक अपेक्षाकृत साधारण पत्र मे प्रकाशित होने के कारण उनकी ओर ध्यान ही नही गया, किन्तु १९३० ई० मे आर्थर एडिंगटन ने ससार का ध्यान लमारतर की खोज की ओर दिलाया। टॉलमैन के ब्रह्माण्डीय स्वरूप-निर्धारण के बाद ही लमारतर को बहुत अधिक परिमाण मे प्राप्त वैज्ञानिक तथ्यो का पता ही नहीं था जो टॉलमैन के कार्य के आधार थे।

टॉलमैन के परीक्षण द्वारा प्राप्त बहुत से तथ्यो पर आधारित गतिशील ब्रह्माण्ड के विचार से वैज्ञानिक जगत् मे हलचल-सी मच गयी। ब्रह्माण्ड निर्माण के कार्य के निमित्त अनुकूल समय मानो आ गया हो। ऐसा हो गया जो भी गणित के समीकरण की रचना करने योग्य हो, उसी ने ब्रह्माण्ड-रचना के कार्य मे अपना कौशल दिखाना चाहा। हॉलैण्ड में विलियम द सिटर, जर्मनी मे लाऊ और हेकमैन, इगलैण्ड मे विलियम मैक्क्रिया और अनेक दूसरे वैज्ञानिको ने अपने अपने प्रिय ब्रह्माण्डो की रचना की। जापान के टकूची पहले पूर्वी वैज्ञानिक थे जिन्होने ब्रह्माण्ड-निर्माण का अपना कौशल प्रदर्शित किया। गणितज्ञो के ब्रह्माण्ड की रचना का यत्रो द्वारा प्रस्तुतीकरण जिससे इसके रूप को देखा समझा जाय, इसकी किसी ने आवश्यकता ही नही समझी। और सर जेम्स जीन्स को कहना पड़ा : "आज ब्रह्माण्ड का स्वरूप हम केवल गणितज्ञो के शुद्ध विचार के द्वारा ही जान सकते है। और यदि हम इसका यत्रों के रूप मे वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो हम एक बड़े जाल मे पड़ जाते है, भ्रमित हो जाते है।"

हुबल और टॉलमैन के ब्रह्माण्ड के गतिशील रूप के अतिरिक्त एक तीसरा स्वरूप भी था जो इन से पुराना था। ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध मे तीन मत थे जिनके अलग-अलग अनुयायी थे। पुराना मत था कि ब्रह्माण्ड धीरे-धीरे ठण्डा पड़ रहा है और सभी तारे अपनी ज्योति शून्य में बिखेर रहे है। परिणामतः आकाश मे चारों ओर एक ही परिमाण मे उष्णता होनी चाहिये। इसका नतीजा यह होगा कि महाशून्य के विस्तार को देखते हुए और तारागो की उष्णता अपेक्षाकृत अत्यन्त न्यून होने के कारण चारो ओर भयकर शीत, स्थिरता और मरण व्याप्त होना चाहिये। अत्यन्त निराशाजनक ब्रह्माण्ड का यह स्वरूप ही कुछ वर्षों पहले तक स्वीकृत किया जाता था। हुबल का दूसरा मत भी कम निराशाजनक नही था। सतत विकासशील ब्रह्माण्ड एक दिन अपने

विस्तार के कारण टूट कर ध्वस्त हो जायेगा।

इन दो मतों के अतिरिक्त नये विज्ञान और ज्योतिष का मत टॉलमैन की व्याख्या को मान्यता देता था। इनके पास सापेक्ष ऊष्मागतिकता के अस्त्र के और ऐसे समीकरण थे जिनके कारण इनका आग्रह था कि ब्रह्माण्ड का विकास-विस्तार और संकुचीकरण दोनो ही क्रियाएँ साथ-साथ लगातार चल सकती हैं और स्थिरीकरण की स्थिति कभी न आवे, ऐसी सम्भावना ही सत्य है। कम-से कम अब ब्रह्माण्ड के एक काल्पनिक स्वरूप पर विश्वास किया जा सकता है जिसके अनुसार सदा सर्वदा स्पन्दनशील जीवित ब्रह्माण्डो का रूप है जो बढ़ता-घटता रहता है, किसी प्रक्रिया द्वारा जिसका ज्ञान अभी नही है। विकिरण, ब्रह्माण्ड के नष्ट पदार्थ की पूर्ति करता रहता है। इस व्याख्या ने पहले के नष्ट हो रहे, समाप्त हो जाने वाले ब्रह्माण्ड के निराशाजनक स्वरूप को एकदम खत्म कर दिया। इसने सर्वदा जीवन-मय स्थिति की आशा भी उत्पन्न की।

क्या और ऐसे ब्रह्माण्डीय तथ्य मिलेंगे जो ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी भ्रमों का निराकरण करेंगे? लालिमा के परिवर्तन की क्रिया की सही व्याख्या की समस्या का क्या कोई समुचित उत्तर मिलेगा? अगर ब्रह्माण्ड विकासशील है तो विकास किस तरह का है? क्या हम तारों के जन्म और खण्डन को अच्छी तरह समझ कर इसका कोई सन्तोषप्रद उत्तर दे पायेंगे? क्या इन तथ्यों द्वारा ब्रह्माण्ड की आयु, पृथिवी की आयु और रासायनिक तत्त्वो के जन्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे? यदि निकटस्थ आकाशगगा दूरस्थ मन्दाकिनी से भिन्न है, तो क्या इससे हमें मन्दाकिनी की उत्पत्ति और विकास का पता चल सकेगा?

हुबल का विश्वास था कि इन सभी प्रश्नों के उत्तर अवश्य मिलेंगे, क्योंकि अब जार्ज एलेरी हेल के प्रयत्नों के कारण एक नया यंत्र उपलब्ध था। अपने जीवन की सध्या में हेल ने एक और बड़ी आकाश-दूरबीन बनाने के प्रश्न पर विचार किया। उन्होंने सोचा कि एक ही बड़ी छलांग द्वारा सौ-इंची के स्थान पर दो सौ-इंची आकाश-दूरबीन का निर्माण करना श्रेयस्कर होगा। इस बड़े भीमकाय विशाल यंत्र द्वारा हम अपने चतुर्दिक् व्याप्त असीम आकाश के तिगुने अधिक भीतर प्रवेश कर पायेंगे और इसके द्वारा हम उन स्थानों का परीक्षण कर सकेंगे जहाँ तक कोई अब तक पहुँच ही नही पाया है। इससे ज्योतिषियों को दस करोड़ और अधिक आकाशगंगाएँ देखने और समझने का अवसर प्राप्त होगा। इस दूरबीन के पुर्जों का वजन ही केवल सैकड़ों टन होगा।

१९२८ ई० मे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड ने कैलिफोर्निया के टेक्नालॉजी प्रतिष्ठान को कई करोड़ रुपयों का अनुदान इस बड़ी आकाश-दूरबीन के बनाने के लिए दिया। इस राशि का उपयोग दूरबीन के दो सौ-इंची दर्पण के बनाने, मशीन मे लगाने, मकान बनाने तथा सभी यंत्रों से युक्त ज्योतिष-भौतिकी की बड़ी वेधशाला के बनाने मे किये जाने की योजना थी। वाशिंगटन के कारनेगी संस्थान में माउण्ट विल्सन की वेधशाला के सहयोग से ही इस नयी वेधशाला का निर्माण होना था। हेल को वेधशाला-समिति का अध्यक्ष बनाया गया और जॉन एण्डरसन को योजना के कार्यान्वित करने के लिए विशेष अधिकारी चुना गया।

समुद्र-तट से पाँच हजार छः सौ फीट की ऊँचाई पर पलोमर की चोटी पर संसार की इस सबसे बड़ी वेधशाला का निर्माण हुआ। यह स्थान सेन डिगो से पैंतालीस मील तथा प्रशान्त महासागर से तीस मील की दूरी पर है। माउण्ट विल्सन की तराई में बस्ती इतनी अधिक बढ़ गयी और वहाँ के निवासियों की जनसंख्या में इतनी अधिक वृद्धि हुई कि इस सौ-इंची वेधशाला का आदर्श स्थान बिगड़ गया। करीब तीस साल मे वेधशाला के नीचे तराई मे ३ लाख ३० हजार जनसंख्या बढ़कर पचीस लाख हो गयी। बस्ती की अत्यधिक रोशनी और करीब मे लॉस एन्जेल्स की जगमगाहट के कारण पहाड़ की चोटी पर की वेधशाला मे कार्यरत वैज्ञानिको के काम मे विघ्न पड़ने लगा। इन्हीं कारणो से इस नयी वेधशाला की आवश्यकता पड़ी जो पासाडेना से सवा सौ मील दूर दक्षिण-पूर्व मे निर्मित हुई। यहाँ की वायु शान्त थी तथा पलोमर पहाड के आस-पास आँधी के झकोरे नही आते। इस नयी दो सौ इंची दूरबीन को तीन मंजिल की भव्य इमारत मे रखा गया, जिसके कमरे पृथग्न्यस्त (इन्सुलेटेड) थे और जिनमे सभी आवश्यक आधुनिक सुविधाओं का प्रबन्ध था। इसकी छत अण्डाकार लोहे की बनी हुई है जिसका वजन ही एक हजार टन है। इसका व्यास १३७ फीट है और गोलाकार यह सारी छत एक बटन के दबाने मात्र से घूमने लगती है।

पहली बार ज्योतिर्विद् एक लम्बी दूरबीन की ट्यूब मे अपने सभी यंत्रो के साथ घुसकर दो सौ-इंची दर्पण के ठीक सामने बैठकर आकाश के और चतुर्दिक् व्याप्त नक्षत्रों के दर्शन कर सकता था। सब काम ठीक हो गया था कि तभी पर्ल हार्बर पर जापानियों ने गोलाबारी कर दी। वेधशाला की आखिरी तैयारियो को रोक देना पड़ा। चालीस से अधिक मिस्त्री जो कैलिफोर्निया के वैज्ञानिक संस्थान मे दूरबीन के पुर्जे बना रहे थे, उन्हें नौसेना के लिए शीशे के बिम्ब (प्रिज्म) बनाने के लिए अपना काम छोड़ कर जाना पड़ा। वे नये

दृश्य, जो इस वेधशाला की दूरबीन द्वारा देखे जा सकते थे, अन्धकार मे लुप्त रहे और सभी लोग संसार को सुरक्षित रखने के उस महान् कार्य में लग गये जिससे इस प्रकार की वेधशालाओं का निर्माण-कार्य सम्भव हो।

एवरडीन, मेरीलैण्ड के आर्डनेंस विभाग के शोध और विकास केन्द्र मे हुवल को बाह्य प्रक्षेपक का कार्य सौंपा गया।

१९४० ई० के ग्रीष्म में ही टॉलमैन वाशिंगटन चले गये थे और वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े उत्तरदायित्व सम्हाल लिये थे। वे राष्ट्रीय सुरक्षा-शोध सभा के अध्यक्ष बनाये गये और वे संयुक्त राष्ट्र-संघ की आणविक शक्ति सम्बन्धी सभाओं मे संयुक्त राज्य के प्रतिनिधि वर्नार्ड बरूच के प्रधान सलाहकार भी थे। उन्होंने अपने वैज्ञानिक ज्ञान तथा क्रियाशीलता से रॉकेट सम्बन्धी योजना मे भी योगदान किया।

युद्ध के चार लम्बे वर्ष बीतते रहे और हुवल आकाश-दर्शन और नक्षत्रों के अध्ययन के लिए बड़े उत्सुक थे। दिसम्बर १९४५ के अन्त मे वे अपने घर पेसाडेना लौटे और तुरन्त ही अपने शान्तिकालीन कार्य में पुराने उत्साह और मनोयोग के साथ जुट गये। दो-सौ इंची आकाश-दूरबीन को पूरा करने वाली विशेषज्ञों की समिति में वे रहे क्योंकि इस वेधशाला की आरम्भिक योजना में उन्होंने विशेष कार्य किया था। इरा वोवेन, जिन्होंने कालटेक में डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की थी और उसी संस्था मे भौतिकी के प्राध्यापक नियुक्त थे, उनको १९४६ में माउण्ट विल्सन वेधशाला का निदेशक बनाया गया और दो वर्षो के अनन्तर माउण्ट पलोमर की वेधशाला के निदेशक नियुक्त हुए। हुवल को माउण्ट विल्सन और माउण्ट पलोमर वेधशालाओ के शोधकार्य का प्रधान बनाया गया और बाद में दोनों वेधशालाओं की संयुक्त शोध समिति के अध्यक्ष बनाये गये और वे दोनों वेधशालाओ मे किये जाने वाले शोधकार्य को सचालित करने लगे।

हुवल उस दिन की प्रतीक्षा मे थे जब नई दूरबीन बिल्कुल तैयार हो जाएगी और दस लाख आँखों की ज्योति प्राप्त होगी। इसकी सहायता से महाशून्य की दो करोड़ प्रकाश-वर्ष की दूरी तक भेदन किया जा सकेगा। १०० इंची दूरबीन की दूरी से इसकी भेदन-शक्ति दुगुनी होगी। इस दूरबीन से आप दस हजार मील पर जल रही मोमबत्ती देख सकेंगे और तीस हजार मील की मोमबत्ती का फोटोचित्र खीच सकेंगे। इस दूरबीन द्वारा हुवल आकाश के आठ गुने बड़े भाग का निरीक्षण कर सकेंगे। इस दो सौ-इंची दूरबीन की सहायक एक ४८-इंची दूरबीन भी इसके साथ जुड़ी होगी, जिसका निर्माण बर्नहार्ड स्मिट नामक जर्मन ने १९३१ ई० में किया था। स्मिट का यह दर्पण

आकाश का भेदन अधिक दूर तक नहीं कर सकता था किन्तु यह आकाश के बहुत बड़े भाग का फोटोचित्र एक बार में ही ले सकता था। यह क्षेत्र दो सौ-इंची दूरबीन के चित्र मे चित्रित भाग से छः हजार गुना बड़ा होता है।

चार वर्ष पश्चात् वह ऐतिहासिक दिवस आया जब हुबल उस बड़े विशेष-तया निर्मित ट्यूब में घुसे। दुर्भाग्यवश टॉलमैन अपने जीवन में इस दूरबीन का तैयार रूप न देख न पाये। वे १९४७ ई० में अपने घर पैसाडेना लौट गये और एक वर्ष तक सैद्धान्तिक अन्वेषण-कार्य उसी विषय पर करते रहे, जिसे उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा वाशिंगटन जाने के पहले प्रकाशित, श्री-सम्पन्न किया था। उन्होंने विज्ञान के सामाजिक तथा दार्शनिक महत्त्व तथा आशय की व्याख्या में भी अपना विद्वत्तापूर्ण योगदान किया। तीन सप्ताह तक निमोनिया से रोग-ग्रस्त होकर ५ सितम्बर, १९४८ में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु से एक सच्चा प्राकृतिक वैज्ञानिक और अमरीका के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली और मानवीयता के गुणों से सम्पन्न वैज्ञानिकों में से एक उठ गया।

नवम्बर, १९४९ ई० में दो सौ-इंची दूरबीन द्वारा नियमपूर्वक निरीक्षण का कार्य आरम्भ कर दिया गया और आकाशगंगा के उस पार के महा-शून्य की अन्धकारमय घाटियों के द्वार परीक्षण के लिए खुल गये। इस नये यन्त्र द्वारा कई समस्याओं को हल करना था और रंगों के लालिमा में परि-वर्तित होने की आकर्षक समस्या को प्राथमिकता दी गई।

युद्ध के समय में और उसके पहले सैकड़ों आकाशगंगाओं की लालिमा को माउण्ट विलसन और लिक वेधशालाओं की मन्दाकिनी-वर्णक्रम-निर्धारण की एक सहकारी योजना द्वारा नाप लिया गया था। यह कार्य १९३५ ई० में ही लिक वेधशाला में निकोलस मेयोल ने आरम्भ कर दिया था। माउण्ट विलसन में बिजली द्वारा फोटो खीचने के एक विशेष यन्त्र की सहायता से एडीसन पेटिट ने अनेकों आकाशगंगाओं की सम्पूर्ण ज्योति का मापन कर लिया था। हुमा-सन भी अब तक अपने काम पर लगे हुए थे। एक नये अत्यन्त तीव्र मन्दाकि-नीय वर्णक्रमलेरा को दो सौ-इंची दूरबीन के प्रधान दर्पण के पास लगाकर नये और अधिक विस्मयकारी तथ्यों के मिलने की आशा थी।

सभी अन्य तथ्यों में से एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात का पता चला। लगभग एक करोड प्रकाश-वर्ष दूर एक अत्यन्त धूमिल तारागुच्छ, हुबल और हुमासन द्वारा प्रतिपादित दूरी-वेग सम्बन्ध के सिद्धान्त द्वारा प्राप्त गति से लगभग छः हजार दो सौ मील प्रति सैकेण्ड की अधिक गति से भाग रहा था। दूसरे शब्दों

में यह मालूम पड़ता है कि एक करोड़ वर्ष पहले, इतना समय इस अत्यन्त दूरस्थ तारागुच्छ से पृथ्वी तक प्रकाश के आने मे लगेगा, ब्रह्माण्ड कही अधिक तेजी के साथ बढ़ रहा था। मालूम पड़ता है कि इस समय ब्रह्माण्ड के विकास के वेग मे कमी आ गई है। कुछ नजदीक की आकाशगगाएँ तो पृथ्वी पर खड़े वैज्ञानिक को स्थिर-सी ही दिखाई पडती है।

उसी समय जब हुवल युद्ध-विभाग के अपने कार्य को समाप्त कर घर लौट रहे थे तभी कैलीफोर्निया की वैज्ञानिक सस्थान की विलियम कैलॉग विकिरण-प्रयोगशाला में तारों के विकास, सौरमडल की आयु तथा रासायनिक द्रव्यो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक नई दिशा मे कार्य आरम्भ हो गया था। इस प्रयोगशाला के निदेशक चार्ल्स लौरीसैन तथा इरा वौवेन, विलियन फौलर और जैसे ग्रीन स्टाईन, जो दो वर्ष बाद आये, अत्यन्त आकर्षक साहसपूर्ण कार्य मे लग गये। निरीक्षण द्वारा नाभिकी प्रतिक्रियाओ की सैद्धान्तिक गणना द्वारा इन्होने देखा कि ब्रह्माण्ड का द्रव्य ७६ प्रतिशत वजन का हाइड्रोजन तथा २३ प्रतिशत हीलियम से बना है। बाकी १ प्रतिशत अन्य तत्त्व मिले हुए है। उन्हे इस बात के भी प्रमाण मिले कि आणविक वजन के वढने से दूसरे हीलियम से कम सोडियम है किन्तु लोहे से सोडियम ज्यादा है। तारो के विकास के अध्ययन से पता चला कि हमारे सौर मडल के अधिकतर पुराने नक्षत्र लगभग साढे चार करोड़ वर्ष की आयु के है और सबसे पुराने नक्षत्र तो साढे छ करोड वर्ष की आयु के हैं। इस प्रकार हमारा सौर मडल आकाशगगा से, जिसका यह एक भाग है, दो करोड़ वर्ष आयु मे छोटा है। हमारी आकाशगगा के आरम्भ मे तो इस सौर मडल की उत्पत्ति ही नही हुई थी। यह एक ऐसी ज्योति-सम्बन्धी खोज थी जिसका मनुष्य के चिन्तन पर प्रभाव पड सकता है।

इन सभी विस्मयकारी खोजो के बीच ब्रह्माण्ड के इस नाटक के प्रधान अभिनेता हुवल को दिल का दौरा हुआ और १८ सितम्बर, १९५३ को अपने ही घर मे उनकी मृत्यु हो गई। वे एक बहुत बडे विद्वान् चिन्तनशील वैज्ञानिक तथा समाज मे बहुत जागरूक व्यक्ति थे। अपनी मृत्यु के कुछ महीने पहले एक भाषण मे उन्होंने महाशून्य के अपने साहसपूर्ण अभियान की चर्चा करते हुए कहा था, "जैसे मैंने आरम्भ किया, वैसे ही समाप्त कर सकता हूँ। पृथ्वी पर बने अपने घर से हम दूर तक देखते है और जिस ससार मे हम पैदा हुए उस ससार की कल्पना करने की चेष्टा करते है। किन्तु ज्यो-ज्यो दूरी बढ़ती है हमारा ज्ञान कम होता जाता है और क्षितिज के दूर धुधलके के सम्बन्ध मे कल्पना-जन्य भ्रामक धारणाएँ बना लेते है। हमारी खोज जारी रहेगी। इसकी पुष्टि नही हुई है, और इसे दबाया भी नही जा सकता।"

हुवल ने ठीक ही कहा था। हुमासन और अन्य वैज्ञानिक रुके नहीं। वे और आगे बढ़े और उन्होंने दो अत्यन्त धूमिल तथा बहुत दूर, पृथ्वी से एक करोड़ प्रकाश-वर्ष दूर, तारागुच्छों के लाल रंग की परिवर्तन-क्रिया को नापने का प्रयत्न किया। और इनकी पीछे भागने की गति इन्होंने ६२ हजार मील प्रति सैकण्ड निर्धारित की जो प्रकाश की गति का एक-तिहाई है। किन्तु अब तक दूर की आकाशगंगा के क्षेत्र के सम्बन्ध मे कोई ठीक तथ्य प्राप्त नहीं हुए है। दूसरे ज्योतिषियों ने भी सहयोग दिया। इनमे एलन सैनडेज नामक एक नवयुवक थे जो १९५७ ई० में कैलिफोर्निया के वैज्ञानिक सस्थान में ज्योतिष में डाक्टर की उपाधि के लिए आये थे। सैनडेज और कुछ अन्य वैज्ञानिक, टॉलमैन के सापेक्षीय ब्रह्माण्ड के समीकरणों का प्रयोग, अत्यन्त दूरस्थ आकाश-गंगाओं की दूरी-वेग सम्बन्धी रेखाक्रम से विलगाव की व्याख्या करने के प्रयत्न भी करते थे।

विगत कुछ वर्षो में ब्रह्माण्ड की रचना तथा प्रकृति की दो लोकप्रिय नई धारणाएँ बढ चली थी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ज्योतिषी फ्रेड होयल ने दो नवयुवक ब्रिटिश गणितज्ञों, हरमन बॉंडी और टॉमस गोल्ड के साथ, स्थिर ब्रह्माण्ड का एक चित्र प्रस्तुत किया। बाद मे गोल्ड हारवर्ड विश्वविद्यालय आये। १९५१ ई० में होयल ने एक विचित्र ब्रह्माण्ड की प्रस्तावना रक्खी, ऐसा ब्रह्माण्ड जिसका आदि था न अन्त। इस अजीब ब्रह्माण्ड मे असीम आकाश है, समय अपरिमित तथा द्रव्य का घनत्व कभी नही बदलता। ज्यों-ज्यो यह ब्रह्माण्ड एक निश्चित गति से फैलता है त्यो-त्यो नई आकाशगंगाएँ स्थानपूर्ति के लिए बनती जाती है। और चूँकि हाइड्रोजन-परमाणु आकाश में निरन्तर बनते रहते हैं, इसके परिणामस्वरूप ब्रह्माण्ड स्थिर रहता है। इस विचारधारा के प्रमुख वक्ता होयल के अनुसार ब्रह्माण्ड का आरम्भ हाइड्रोजन-परमाणुओं के एक बहुत ठण्डे, पतले तथा सघर्षमय एकत्रीकरण से हुआ। चुम्बकीय आकर्षण से हाइड्रोजन गैस का एक भाग जम गया और अन्त मे तारा बना। ज्यो-ज्यो फिर तारे सकुचित होते गये उनका अन्तर-देश सघन और उष्ण होता गया और प्रोटॉन मे मिलकर हाइड्रोजन के भारी केन्द्र बनने लगे। फिर ये धीरे-धीरे भारी तत्त्वो मे बदलते गये।

दूसरा और अधिक लोकप्रिय ब्रह्माण्ड-चित्र तथाकथित क्रम-विकसित ब्रह्माण्ड का है। इसके समर्थक हैं भौतिकी के रूसी वैज्ञानिक जार्ज गेमाव, जिन्होंने कुछ समय तक लेनिनग्राड के विश्वविद्यालय मे अध्यापन-कार्य किया और १९३४ ई० से सयुक्त राज्य में भौतिकी के प्राध्यापक हैं। गेमाव की धारणा है कि ब्रह्माण्ड आरम्भ मे इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूटॉन इन तीन प्राय-

मिक तत्त्वों से मिश्रित द्रव्य का सघन रूप था। लगभग पाँच करोड वर्ष पहले इस अत्यन्त सघन ब्रह्माण्ड में विस्फोट हुआ। इस भयंकर क्रिया के पाँच मिनट बाद ब्रह्माण्ड ठण्डा हुआ और प्रोट्रॉन तथा न्यूट्रॉन मिलकर बडी-बड़ी इकाइयाँ बने और धीरे-धीरे भारी-से-भारी तत्त्वों का निर्माण हुआ। विस्फोट द्वारा प्रक्षेपित द्रव्य से तारे, ग्रह तथा आकाशगंगाएँ बनीं। इस समूचे विस्फोट मे केवल तीस मिनट समय लगा।

सृष्टिशास्त्र के क्षेत्र मे हुई नई प्रगति ने ब्रह्माण्ड की आयु की समस्या को फिर उठाया। जैसा हुबल ने कहा था कि आकाशगंगा के पार महाशून्य की प्रत्येक अनुसंधान-यात्रा, केवल आकार-प्रकार की जांच-पड़ताल और खोज ही नहीं करती, यह ब्रह्माण्ड की आयु पर भी प्रकाश डालती है। हाल की नई खोजों ने पुरानी मान्य धारणाओं को झकझोर दिया है। ब्रह्माण्ड की आयु के सम्बन्ध मे वैज्ञानिकों ने कई करोड़ वर्षों का अनुमान उल्कापिण्ड, विकिरण-क्रिया, समुद्र के खारेपन आदि अनेक अन्य कारणों से लगाया था। किन्तु ज्यों-ज्यों नई दिशाएँ खुलती गयी, वैसे ही उन्होने समकालिक रीति से वर्षों को छोटी-छोटी अवधि की सीमा में डाल दिया। विकासशील ब्रह्माण्ड अवश्य ही निकट के वर्षों मे निर्मित हुआ होगा या फिर अब तक यह और अधिक फैल गया होता अथवा पुन. सकुचित होने के पूर्व एकदम फैल कर विस्तारित हो गया होता।

पहले के निरीक्षणों और खोजों द्वारा यही अनुमान होता था कि अधिकतर नक्षत्र एक अरब वर्ष पुराने है। कुछ युगल नक्षत्र, जैसा कि उनके परिक्रमा-पथ के आकार से मालूम होता है, दो अरब वर्ष पुराने है। यहाँ स्थिति ऐसी बन जाती है कि तारे ब्रह्माण्ड से भी पुराने मालूम पडते है। क्या यह सम्भव है कि सन्तान अपने पिता से भी अधिक आयु की हो? एडिंगटन ने कहा : "आज काट-छांट का फैशन है। और यदि विकासशील ब्रह्माण्ड का सिद्धान्त सही है तो फिर हमे अपने समय के माप में ९९ प्रतिशत की कटौती करनी होगी।" उन्होंने विज्ञान को चेतावनी दी कि शायद तारो के जन्म से लेकर अब तक के समय-सम्बन्धी निश्चित किये हुए मत भ्रामक और असत्य निकलें। वास्तव में इन नक्षत्रों की आयु हमारे अब तक के अनुभवो से कही कम हो, और इस ब्रह्माण्ड की आयु से तो बहुत ही कम।

१९५२ मे माउण्ट पलोमर वेधशाला के वाल्टर वाडे ने यह खोज की कि आकाशगंगाओं के बीच की दूरी को नापने के लिये जो मान-दण्ड निश्चित किया है, वह असत्य मालूम होता है। सीफियड के एक तरह के होने के सम्बन्ध

में शकाएँ व्यक्त की गयी। माउण्ट विल्सन और माउण्ट पलोमर वेधशालाओ के हाल्टन आर्प के मतानुसार आकाशगगा के सीफियड दूसरी मन्दाकिनियों के सीफियट से एक दम भिन्न हो सकते हैं। आकाशगंगाओं की दूरी जो हमने निश्चित की है, वह अधिक भी हो सकती है, शायद दुगुनी हो। इस सिद्धान्त द्वारा अखिल ब्रह्माण्ड का आकार द्विगुणित हो जायगा और इसकी आयु पाँच छ करोड वर्ष हो जायगी।

यह कदाचित् सम्भव हो कि दो अत्यन्त दूरस्थ एक करोड़ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर के तारा-गुच्छो के सम्बन्ध मे हुमासन द्वारा किये जाने वाले परीक्षणों के परिणाम से इस समस्या को तथा ऐसी ही कई और महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाया जा सकेगा। एक दुर्घटना द्वारा प्रादुर्भूत रेडियो-ज्योतिष, द्वारा ही शायद हमारी समस्याओ का निदान हो। दो सौ-इंची आकाश-दूरबीन की उपयोगिता जब समाप्त हो जायगी, तब रेडियो-दूरबीनो का सहारा लेना पडेगा। ये उंगलियाँ महाआकाश के दूरतम भागों मे पहुँचने की क्षमता रखती है। विस्कोनसिन विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त कर ओकलाहामा के निवासी एक नवयुवक ने बहुत कम उम्र मे ही इस वैज्ञानिक यंत्र का आविष्कार किया।

१९२८ में बेल टेलीफोन प्रयोगशाला के हॉम डेल, न्यू जरसी केन्द्र के तकनीकी कर्मचारी के रूप मे कार्ल जास्की की नियुक्ति हुई, उनको स्टेटिक के कुछ स्रोतो का, पता लगाने का काम सौंपा गया। यह एक अत्यन्त व्यावहारिक समस्या थी। एटलान्टिक के उस पार रेडियो टेलीफोन द्वारा भेजे जाने वाले सन्देशो पर इनका प्रभाव पडता था। जांस्की ने चक्राकार दिश्य एनटेना का उपयोग किया जिससे स्टेटिक के कारणो का पता लग सके। अन्त मे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका स्रोत पृथ्वी के वायुमण्डल के बाहर किसी स्थान पर है। उनका विश्वास था यह हमारी आकाशगगा के केन्द्र मे है, जिस की दूरी अनुमानतः २६००० प्रकाश-वर्ष है। ब्रह्माण्ड को जानने-देखने की एक नयी खिड़की खुलने वाली थी।

१९२५ तक यही विश्वास किया जाता था कि इलेक्ट्रॉन, अपनी धुरी पर लट्टू की तरह घूमता है। इसके द्वारा यह खोज सम्भव हुई कि अणुओं मे रेडियो-तरगें निकलती हैं। इन रेडियो तरंगों की ध्वनि को कैसे पकडा जाय, यह एक विकट समस्या थी। दूसरे देशों के वैज्ञानिको ने अनुसधान की इस नई दिशा मे अत्यधिक रुचि ली और बाहरी आकाश के विक्षुब्ध मेघो के विकिरण आवेगों को पकडने के लिये घोर परिश्रम और प्रयत्न किये। हाइड्रो-

जन आयन का संगीत ही वैज्ञानिकों का ध्येय नही था। वे ब्रह्माण्डीय तुमुल ध्वनि के प्रमुख स्वरों को सुनने के लिये भी उत्सुक थे। अमरीकी विज्ञान इस क्षेत्र में पिछड गया।

इगलैंड, आस्ट्रेलिया, हॉलैण्ड और सोवियत रूस मे बडे सुग्राही रेडियो रिसीवर तैयार किये गए और ये रेडियो मे आने वाली निरर्थक आवाज को बहुत कम करके निश्चित स्रोतो की ध्वनि प्रसारित करने में समर्थ थे। रेडियो दूरवीन, रेडियो तरंगों को एकत्र कर उसी तरह फोकस कर लेती थी जैसे साधारण दूरबीन प्रकाश-तरंगों को फोकस करती है। एक प्रकार की रेडियो दूरबीन परवलयिक दर्पण है जो एनटेना द्वारा गृहीत तरंगो को बिजली की अधिक शक्ति से बढ़ाकर रेडियो रिसीवरो में पहुँचाती है। मैनचेस्टर विश्व-विद्यालय ने जोड्रेल बैंक, चेशायर में, १९५० ई० मे ढाई सौ फुट की एक रेडियो-दूरबीन निर्मित की। इसकी डिस्क को घुमाया जा सकता था। रूसियो ने साढे तीन सौ फुट की डिस्क वाले रेडियो-दूरबीन के निर्माण की सूचना दी है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की केवेन्डिश प्रयोगशाला मे एक और भी शक्ति-शाली तथा आधुनिक यंत्र बन रहा है। यह छः करोड प्रकाश-वर्ष की दूरी तक भेदन कर सकता है। यह दूरी माउण्ट पलोमर की चोटी पर लगी दूरबीन की भेदन-शक्ति की तिगुनी है।

इस क्षेत्र में अमरीकी वैज्ञानिक अब आगे बढ़ रहे है। २५ मार्च, १९५१ की रात हेरोल्ड ईवेन ने पृथ्वी के वायुमण्डल के बहुत ऊपर आकाश के हाइड्रोजन मेघों के विकिरण को ध्वनि-अकित किया। इसके तुरन्त बाद हारवर्ड कालेज की प्रयोगशाला ने अपनी २४ फुट की रेडियो दूरबीन द्वारा आकाशगगा के हाइड्रोजन मेघों के शोधकार्य की एक योजना चला दी और १९५६ ई० मे अपने एसाइज केन्द्र पर एक नया यत्र स्थापित किया। इस यत्र मे ६० फुट की डिस्क है। सयुक्त राज्य की नौसेना—प्रयोगशाला में पचास फुट डिस्क वाला यत्र है और चौरासी फुट डिस्क वाली रेडियो-दूरबीन रिवरसाइड मेरीलैंड मे लगी है। राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान की प्रयोगशाला मे ८५ फुट की डिस्क वाला यत्र है तथा नौसेना की प्रयोगशाला में अमरीका मे सबसे बड़ी १४० फुट की डिस्क वाली रेडियो दूरबीन लगी है।

शोध के इस आकर्षक तथा शीघ्र विकास से इस क्षेत्र में बहुत काफी प्राप्ति हुई है। १९४६ ई० में सिगनस, कैसियोपिया तथा क्रेब नेबुला में पहली बार रेडियो-नक्षत्रों की खोज हुई। १९५० तक कैम्ब्रिज के आकाशदर्शियों ने उत्तरी गोल मे पचास रेडियो-नक्षत्र खोज निकाले और आस्ट्रेलिया के एक

दल ने दक्षिणी आकाश में लगभग इतने ही रेडियो-नक्षत्रों का पता लगाया। पाँच वर्ष बाद ऐसे दो हजार स्थानों का पता लग गया था और दूर होने के साथ-साथ इन रेडियो-केन्द्रों की सघनता तथा शक्ति बढ़ती पायी गई। इससे ब्रह्माण्ड के विकासशील सिद्धान्त को बहुत बल मिलता है।

अनुसन्धान का यह क्षेत्र अत्यन्त आकर्षक और विस्मयकारी है। ज्यों-ज्यों अधिक सुग्राही यंत्रों का निर्माण होगा, त्यों-त्यों अधिक अप्रत्याशित और उत्तेजक तत्त्व सामने आयेंगे। इसी तरह का एक यंत्र मैसाचुसेट्स के वैज्ञानिक-संस्थान मे निर्मित हुआ है, जिसमें इलेक्ट्रानिक्स द्वारा अत्यन्त संतोषप्रद तक्षण-क्रिया से बढ़िया विवर्तन-जालियाँ तैयार की जाती हैं। नौ-सैनिक विज्ञान संस्थान के कार्यकर्ताओं के सहयोग से कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के चार्ल्स टाउन्स ने १९५४ में एक नये रेडियो-तरंग-प्रवर्द्धक का निर्माण किया। इसको मेसर (MASER) के नाम से पुकारते हैं। तीन वर्ष पश्चात् हारवर्ड विश्वविद्यालय के निकोलस ब्लूमबर्गन ने एक नये प्रकार के 'मेसर' का निर्माण किया। इसके द्वारा विशेषकर आकाशगंगीय हाइड्रोजन की तरंगों से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था। इसमे संश्लिष्ट माणिक स्फटिक का प्रयोग किया गया है और इसकी सहायता से रेडियो-दूरबीन का क्षेत्र दस गुना अधिक बढ़ जायगा। इसके द्वारा वैज्ञानिक महाशून्य की ध्वनि सुन पायेंगे और इससे हम अखिल ब्रह्माण्ड के दूसरे छोर तक पहुँच सकेंगे।

कदाचित्, इस अखिल ब्रह्माण्ड की उबलती हुई कड़ाही का मन्थन कर, अमरीकी विज्ञान ऐसी निधियाँ प्राप्त कर सकेगा जो अखिल विश्व की प्रकृति तथा रचना के हमारे अनेकों प्रश्नों का सन्तोषप्रद और समुचित उत्तर देंगी।

अध्याय ४

अर्नेस्ट आर्लेण्डो लारेंस

(१६०१—१६५८)

विश्व विज्ञान का ऐतिहासिक मोड़

विज्ञान को परमाणु के हृदय को वेधने के महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए बीसवीं शताब्दी तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। पदार्थ और विकिरण, दोनो के रहस्यों का पता लगाने के लिए इस कार्य की योजना बनाई गई। इस कार्य में इतना अधिक विलम्ब इसलिए हुआ, क्योंकि इसके लिए नए उपकरणों, इंजीनियरी के विकसित तरीकों और नई विधियों की आवश्यकता थी। वैज्ञानिक यह अनुभव कर रहे थे कि संसार भर के वैज्ञानिकों के सहयोगी प्रयास से ही विज्ञान की बुनियादी समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है। इस नई विचारधारा के एक नेता ने कहा कि "वह युग बीत गया है, जब एक वैज्ञानिक, चाहे उसकी लगन कितनी भी अधिक क्यों न हो, बिना किसी अन्य की सहायता के महत्त्वपूण प्रगति कर सकता था। कुछ परीक्षण-नलियों और थोड़े-बहुत तारों तथा उपकरणों से प्रयोग करने का जमाना गुजर गया है। परमाणु के नाभिक के रहस्य को उद्‌घाटित करने के लिए बड़े इंजीनियरी पैमाने पर विशाल यंत्रों का विकास और निर्माण करना होगा।" इसके लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी, जो नए अनुसंधान संगठनों और मानव-हितकारी संस्थाओं ने दिया। यद्यपि इस महान् कार्य का आरम्भ यूरोप में हुआ, पर जल्दी ही अमरीका के भौतिकी-विज्ञानी और रसायनशास्त्री इस कार्य में सम्मिलित हो गए, और अन्ततः उन्होंने इस कार्य का नेतृत्व सँभाला।

१८६७ में भौतिकी-विज्ञान की एक घटना ने संसार को हिला दिया। अब तक परमाणु को पदार्थ की सबसे छोटी इकाई माना जाता था, पर जोसेफ जॉन टामसन ने इस बात को गलत सिद्ध कर दिया। टामस कैम्ब्रिज, इंग्लैंड की केवेंडिश भौतिकी प्रयोगशाला के अध्यक्ष थे। और उनके अधीन बहुत मेधावी विद्यार्थी कार्य कर रहे थे। उस वर्ष ३० अप्रैल को टामसन ने घोषणा

की कि कैथोड किरण (ऋणाग्र किरण) ऋण विद्युत् के कण हैं। इन कणों को उन्होंने इलेक्ट्रॉन कहा, जो परमाणु का भाग हैं। उन्होंने कहा कि यह कहना सही नहीं है कि परमाणु को विभाजित नहीं किया जा सकता। परमाणु से भी एक छोटा कण, इलेक्ट्रॉन है। और इस अनुसंधान से विज्ञान की एक प्राचीन मान्यता समाप्त हो गई।

टामसन का अनुमान था कि इलेक्ट्रॉन का भार हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार का १८००वाँ भाग होता है। हाइड्रोजन सब रासायनिक तत्त्वों में में सबसे हल्की होती है। संसार भर के वैज्ञानिक टामसन के प्रयोगों से पूरी तरह आश्वस्त नहीं हुए। स्वयं टामसन भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे। उन्होंने अपने एक विद्यार्थी चार्ल्स टामसन रीज विल्सन को बुलाकर पूछा कि "क्या तुम इलेक्ट्रॉन का फोटो ले सकते हो ?" विल्सन ने छह वर्ष तक इस काम के लिए एक कैमरा तैयार करने का प्रयास किया और १९११ में वे एक चित्र लेने में सफल हुए, पर यह चित्र संतोषप्रद नहीं था। कैमरे की प्लेट पर एक इलेक्ट्रॉन के, परमाणु से निकलने के बाद के मार्ग की रेखाओं का जाल सा दिखाई पड़ा। इसे इस इलेक्ट्रॉन का फॉग-ट्रैक या कुहरा-पथ कहा गया और इसकी उपस्थिति इलेक्ट्रॉन के अस्तित्व को सिद्ध करने का अकाट्य प्रमाण थी।

विल्सन ने अपने क्लाउड चेम्बर की ईजाद से इस कार्य में अत्यधिक सहायता दी। इस उपकरण में अनेकों सुधार किए गए थे और इसने परमाणु के रहस्य का पता लगाने में बहुत सहायता दी चाहे यह इस कार्य का एकमात्र अनिवार्य साधन न रहा हो। इसकी सहायता के बिना परमाणु के विखंडन का महत्त्वपूर्ण और आश्चर्यजनक काम सम्भवतः असम्भव हो जाता। आज परमाणु-भौतिकी में इसका वही स्थान है, जो ज्योतिर्विज्ञान में दूरबीन का और जीव-विज्ञान में सूक्ष्मदर्शी का। इस ईजाद के सोलह वर्ष बाद विल्सन को नोबेल पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

टामसन ने इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान की जो संख्या बताई थी, वह अनुमान-भर थी। इसका अन्तिम और निश्चित निर्धारण राबर्ट एण्ड्रूज मिलिकन ने शिकागो-विश्वविद्यालय की भौतिकी प्रयोगशाला में किया। राबर्ट के माता-पिता यह बात कभी सपने में भी न सोचते थे कि उनका पुत्र वैज्ञानिक बनेगा। यदि स्वयं उनका रुझान इस विषय की ओर था, तो उन्हें स्वयं इस बात का पता बाइस वर्ष की उम्र तक न चला। २५ वर्ष की उम्र में उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हें भौतिकी-विज्ञानी बनने का प्रशिक्षण लेना चाहिए।

विज्ञान के आकर्षण ने उन्हें अपने शिकंजे में जकड़ लिया। उन्होने माइकेल प्यूपिन के अधीन अध्ययन किया, जिन्होने मिलिकन को गोटीजेन जाकर वाल्टर नर्न्स्ट के अधीन अध्ययन करने के लिए पैसा उधार दिया। उसके कुछ समय बाद माइकेलसन ने उन्हें शिकागो विश्वविद्यालय में भौतिकी-विज्ञान मे सहायक के रूप में काम करने का निमन्त्रण दिया।

मिलिकन इलैक्ट्रॉन का भार पता लगाने जा रहे थे। उन्होने एक बहुत अच्छी विधि (तेल-बिंदु विधि) निकाली, जिससे उन्हे एक विद्युत् तुला उपलब्ध हुई, जो किसी भी अन्य तुला से हजारों गुना बेहतर थी। उन्होंने एक इलैक्ट्रॉन को अलग किया और इसके चार्ज का पता लगाया। उनके अनुसार इलैक्ट्रॉन का भार हाइड्रोजन के एक परमाणु भार का १/१८३५ था। भौतिकी के इस महत्त्वपूर्ण अनुसंधान पर मिलिकन को १९२३ मे नोबेल पुरस्कार मिला।

इलैक्ट्रॉन सिद्धान्त से अनेकों जटिल समस्याएँ हल हुई और बहुत से विचित्र प्रभावो का पता चला। टामस ए० एडीसन ने १८८३ मे जो प्रेक्षण किया था, उसका सन्तोषप्रद उत्तर इलैक्ट्रॉनों से मिला। एडीसन ने देखा कि जब किसी शून्यीकृत काँच के बल्ब के कार्बन फिलामेण्ट को बैटरी से गर्म किया जाता है, तो बल्ब की धातु की प्लेट मे करंट आ जाता है। यह तभी होता है, जब बैटरी के धनाग्र को धातु की ठण्डी प्लेट से जोड़ा जाता है। इस प्लेट को बैटरी के ऋणाग्र से जोड़ने पर यह करेंट नही आता। तो यह करेंट किस प्रकार शून्य को पार कर गर्म फिलामेंट से ठण्डी प्लेट तक पहुँचा और इस प्लेट को बैटरी के धनाग्र मे ही जोडने पर यह बात हुई? इलैक्ट्रॉन के अनुसधान तक इन प्रश्नो का कोई उत्तर नही था। ब्रिटेन के महान् बिजली इन्जीनियर और एडिसन के मित्र जॉन ए० फ्लेमिंग ने उस समय समझाया कि एडीसन का यह प्रभाव गर्म कार्बन फिलामेंट से निकलने वाले ऋणात्मक इलैक्ट्रॉनों से उत्पन्न होता है और शून्यीकृत ट्यूब की धनात्मक प्लेट इन्हे अपनी ओर आकर्षित करती है। बहुत तेज गर्म कार्बन परमाणुओं से ये इलैक्ट्रॉन निकलते है।

इलैक्ट्रॉन के अनुसंधान के बाद जे० जे० टामसन ने तर्क दिया कि सब तत्त्वो के तटस्थ उदासीन परमाणुओं में ऋणात्मक इलैक्ट्रॉन के प्रभाव के मुकाबले के लिए धन-विद्युत् होना भी आवश्यक है। पर सब पदार्थों मे धन विद्युत् वाले कणों को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता था? इस को सुलझाने का काम टामसन के एक विद्यार्थी अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने में लिया। रदरफोर्ड न्यूजीलैंड से कैम्ब्रिज आए थे। यदि वे ५८मा८

में छिपे रहस्य को जानना चाहते थे, तो यह आवश्यक था कि वे बहुत तेजी से चलने वाले अत्यधिक छोटे कणों का उपयोग करें। १६०२ में उन्होंने ऐसी ही सूक्ष्म 'गोली'—एल्फा कण का अनुसंधान किया, जिसे उन्होंने रेडियम में विकरित होने के बाद पतले कांच की ट्यूबों में बन्द कर लिया था। उन्होंने इसे हीलियम का विद्युन्मय परमाणु बताया था। एल्फा-कण रेडियम से १२ हजार मील प्रति सैकण्ड की गति से निकलते हैं और इसका द्रव्यमान एक इलैक्ट्रॉन से लगभग आठ हजार गुना अधिक होता है। उस समय विज्ञान को ज्ञात कणों में इस कण की ऊर्जा सर्वाधिक मानी, ७० लाख इलैक्ट्रॉन वोल्ट, थी।

रदरफोर्ड ने वर्षों तक अपने युवक सहायकों, हंस गीजर और जेम्स चाडविक की सहायता से इन छोटे-छोटे कणों को सोने के वर्कों पर फेंका। उनमें से कुछ सोने के वर्कों में से गुजर गए। अन्य कुछ विभिन्न कोण बनाते हुए परावर्तित हुए और कुछ कण इसे पार नही कर सके, बल्कि बिल्कुल सीधे वापस आए। इस अन्तिम बात से उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि "यह मेरे जीवन की सबसे अधिक आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय घटना थी। यह उतनी ही अविश्वसनीय घटना थी कि आप एक अत्यधिक पतले टिशू कागज पर पन्द्रह इंच का तोप का गोला दागें और वह कागज से टकरा कर उलट कर आपको लगे।" मई, १६११ में उन्होंने जो लेख प्रकाशित किया, बाद में उसकी गणना विज्ञान के गौरवपूर्ण लेखों में हुई। इस लेख का शीर्षक **स्केटरिंग आफ़ एल्फा एण्ड बीटा पार्टिकल्स एण्ड दि स्ट्रक्चर आफ दि एटम** था। रदरफोर्ड उस समय मानचेस्टर विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर थे और उन्होंने बताया कि उनके हजारों फाग-ट्रैकों से पता चला कि उनके द्वारा प्रक्षिप्त एल्फा-कण सोने के अरबों परमाणुओं को एक सीधी रेखा में पार कर निकल गए। पर कुछ ऐसे एल्फाकण भी थे, जिनके रेखा-चित्रों को देखने से पता चलता था कि अचानक उन्हें किसी वस्तु ने उनके निश्चित पथ से अलग फेंक दिया, मानो वे किसी अत्यधिक कड़ी वस्तु से टकरा गए हों। इस बात से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि परमाणु के केन्द्र में ऐसी कोई अत्यन्त ठोस वस्तु होनी चाहिए, जो इन अत्यन्त छोटे-छोटे कणों को परमाणु के बीच से नहीं गुजरने देती। इसके अलावा उन्होंने जिन तत्वों पर इन सूक्ष्म कणों से प्रहार किया, उन सबसे हाइड्रोजन के धनात्मक परमाणु निकले। इस प्रकार रदरफोर्ड ने *प्रत्येक परमाणु के एक और अनिवार्य अंग का अनुसंधान किया,* जो ऋणात्मक इलैक्ट्रॉन का प्रतिरूप था। इस धनात्मक कण को उन्होंने प्रोटॉन नाम दिया और यह इलैक्ट्रॉन से १८३५ गुना भारी था। प्रोटॉन एक इलैक्ट्रॉन-रहित हाइड्रोजन का सामान्य परमाणु था।

रदरफोर्ड ने ही पहली बार आणविक परमाणु की कल्पना की। उन्होने हमे पदार्थ की रचना का नया चित्र दिया। पदार्थ परमाणु से बना होता है, जो सौरमंडल जैसे होते है। प्रत्येक परमाणु का एक भारी केन्द्र या नाभिक होता है, जिसमे धनात्मक विद्युत् या प्रोटॉन होते है। इनके चारों ओर बहुत छोटे-छोटे इलैक्ट्रॉन घूमते रहते हैं। नाभिक और उसके चारों ओर घूमने वाले इलैक्ट्रॉनों के बीच खाली स्थान होता है, जो वस्तुतः इतना शून्य होता है कि पर: माणु मकडी के जाले के छिद्रयुक्त तन्तुओं जैसा लगता है। समस्त पदार्थ केवल इलैक्ट्रॉनों और प्रोटॉनों से निर्मित होते हैं।

नाभिक के चारों ओर के इलैक्ट्रॉन एक स्थान पर स्थिर नही रहते। वे निरन्तर गतिशील रहते है और नाभिक के चारों ओर विभिन्न कक्षाओ मे अत्यधिक गति से चलते हैं। परमाणु की इस रचना के कारण ही रदरफोर्ड ने परमाणु को एक सूक्ष्म सौरमंडल के अनुरूप बताया, जिसका नाभिक सूर्य होता है और उसके चारों ओर घूमने वाले इलैक्ट्रॉन सूर्य के चारों ओर घूमने वाले नक्षत्रो के समान होते हैं। इतनी अधिक गति के कारण ही इलैक्ट्रॉन परमाणु के केन्द्र मे नही गिरते जो धनात्मक होता है। इसी प्रकार सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते समय हमारी पृथ्वी और अन्य नक्षत्र गुरुत्वाकर्पण के कारण अत्यधिक विशाल सूर्य में नही गिरते।

दूसरा महत्त्वपूर्ण सवाल था, 'प्रत्येक परमाणु मे कितने प्रोटॉन होते हैं ?' रदरफोर्ड ने परिकल्पना की कि प्रत्येक तत्त्व के नाभिक का चार्ज उस तत्त्व के परमाणु-भार के अनुपात मे होना चाहिए। १९१२ मे उन्होने इस समस्या के अनुसधान का काम अपने सर्वाधिक मेधावी विद्यार्थी २६वर्षीय हेनरी जी० जे० मोसेली को सौपा। वर्ष की समाप्ति से पहले ही मोसेली ने परमाणु-संख्याओ के नियम का अनुसधान किया। ९२ रासायनिक तत्त्वों की सूची मे तत्त्व का जो स्थान होता है, वही उसकी परमाणु-संख्या होती है। मोसेली की इस सारिणी मे पहला तत्त्व हाइड्रोजन था, जिसकी परमाणु-सख्या एक थी। यूरेनियम इस सारिणी का अन्तिम तत्त्व था औरइसकी परमाणु-संख्या ९२ थी। रासायनिक तत्त्वो की यह नई सारिणी एक रूसी, दिमित्री मेनदेलीफ की सारिणी से ज्यादा मौलिक थी, जिन्होने १८६९ मे संसार को तत्त्वों की आवर्त सारिणी दी।

रदरफोर्ड ने फ्लास्को में बन्द नाइट्रोजन-गैस के परमाणुओं पर एल्फा-कणों से प्रहार किया। वर्षो तक वे ये परीक्षण करते रहे। जब पहला महायुद्ध शुरू हुआ तो केवेंडिश प्रयोगशाला के अनुसधानकर्ताओं को परमाणु के रहस्योद्-

घाटन का अपना कार्य रोकना पड़ा। प्रायः एक ही दिन में इसके वैज्ञानिकों को विभिन्न सरकारी सेवाओं में भेज दिया गया, पर रदरफोर्ड अपने अनुसंधान के लिए थोड़ा बहुत समय निकाल लेते थे।

युद्ध की समाप्ति पर रदरफोर्ड को टामसन के स्थान पर कैवेंडिश प्रयोगशाला का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और जून १६१६ को आपने एक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान की सफलता की घोषणा की। इस प्रयोग की सफलता का प्रमाण बहुत सूक्ष्म था। उसे पहली बार देखना बड़ा कठिन था, पर बाद मे विल्सन क्लाउड चेम्बर की फोटो-प्लेट ने इस रहस्य को स्पष्ट किया। इस प्लेट के कुहरा-पथ की एक टूटी हुई रेखा ने यह बात स्पष्ट कर दी कि एक एल्फा-कण को अपना बहुत छोटा-सा लक्ष्य मिल गया था और उसने नाइट्रोजन परमाणु के नाभिक में प्रवेश किया तथा एक प्रोटॉन को नाभिक से निकाल कर नाइट्रोजन को एक दूसरे तत्त्व ऑक्सीजन में परिवर्तित कर दिया। यह विज्ञान के इतिहास में पहला सफल कृत्रिम तत्त्वांतरण था। अर्थात् कृत्रिम उपायों से एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में बदल दिया गया था।

पर अभी भी रदरफोर्ड की परमाणु की सौर मंडल जैसी रचना की कल्पना को पूरी तरह सिद्ध करना था। गैसीय तत्त्वों को तपा कर उद्दीप्त करने से जो विचित्र वर्णक्रम या बहुत चमकीली रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हें समझाया न जा सका। यदि इलैक्ट्रॉनों की गति के कारण वर्णक्रम का यह प्रकाश उत्पन्न होता है, तो रदरफोर्ड के परमाणुओं को निरन्तर यह प्रकाश विकिरित करना चाहिए क्योंकि उनके कथनानुसार इलैक्ट्रॉन तेज गति से निरन्तर घूमते रहते हैं। यदि इन इलैक्ट्रॉनों की इतनी अधिक गति कायम न रहे, तो वे परमाणु के नाभिक में गिर जायेंगे। स्पैक्ट्रोस्कोप से जो बात स्पष्ट हुई थी, उसे वैज्ञानिक विद्युत्गतिकी के नियमों के आधार पर नहीं समझा सके। अब गतिरोध उत्पन्न हो गया था।

डेन्मार्क के एक युवक नील्स बोह्र ने इस गतिरोध को समाप्त किया। वे १६१२ की वसन्त ऋतु में रदरफोर्ड के अधीन काम करने मानचेस्टर आए थे। बोह्र ने अगले वर्ष, २८ वर्ष की उम्र में तीन क्रान्तिकारी लेख प्रकाशित किए, जिनमें आणविक परमाणु के महत्त्व को समझाया गया था। उन्होंने कहा कि विद्युत्गतिकी के पुराने नियम परमाणु के भीतर की क्रियाओं पर लागू नहीं होते। उन्होंने इसे समझाने के लिए मैक्सप्लांक के ऊर्जा क्वांटा सिद्धान्त का सहारा लिया। विज्ञान के इतिहास का यह एक महान् क्रान्तिकारी सिद्धान्त १६०० की समाप्ति की ओर प्रतिपादित हुआ था। प्लांक ने कहा था कि

ऊर्जा कणदार होती है। यह निरन्तर प्रवाहित नहीं होती, बल्कि छोटे सीमित पुंजों मे, जिन्हे क्वाटा कहते है, ऊर्जा प्रवाहित होती है। प्रत्येक क्वाटा का द्रव्यमान, तरंग लम्बाई पर निर्भर करता है। बोह्र ने कहा कि परमाणु के वाहरी इलैक्ट्रॉन वृत्ताकार कक्षाओं में नाभिक के चारों ओर घूमते रहते है। कैथोड किरण, एक्स किरण और यहाँ तक कि ताप आदि बाह्य शक्तियो के प्रभाव के बिना इस क्रम मे अन्तर नहीं पड़ता। उक्त शक्तियो द्वारा बाधा उत्पन्न होने पर इलैक्ट्रॉन एक कक्षा से कूद कर नाभिक के पास की दूसरी कक्षा मे पहुँच जाते हैं। इलेक्ट्रान के एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे पहुँचने से वर्णक्रम में एक भिन्न रेखा दिखाई पडती है और प्रत्येक इलेक्ट्रॉन के इस प्रकार दूसरी कक्षा मे कूदने से विशेष प्रकार का प्रकाश होता है। इस विधि से बोह्र ने हाइड्रोजन के जटिल वर्णक्रम को समझाया और अन्य तत्त्वों की इलेक्ट्रॉन कक्षाओं का पता लगाने का प्रयास किया।

१९१६ में गिल्वर्ट एन० लेविस ने परमाणु की रचना का आगे स्पष्टीकरण किया। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के इस प्रतिभावान सैद्धान्तिक वैज्ञानिक और प्रयोगकर्त्ता ने एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें नाभिक के चारों ओर नक्षत्रों की तरह घूमने वाले इलेक्ट्रॉनों की स्थिति को ध्यान मे रखकर परमाणु की नई रचना का स्पष्टीकरण किया गया था। उन्होंने कहा कि नाभिक के चारों ओर काल्पनिक धनात्मक कवच या शैल होते है, जिनमें विभिन्न संख्याओं में इलेक्ट्रॉन होते है, जिनकी स्थिति निश्चित रहती है। तीन वर्ष वाद इरविंग लैंगम्योर ने अपने एक-केन्द्रीय कवच सिद्धान्त का प्रतिपादन कर उक्त विचार को और व्यापक बनाया। लैंगम्योर, जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के कर्मचारी थे। वे परमाणु की ऐसी रचना की खोज में थे, जो रासायनिक क्रिया को स्पष्ट कर सके। उन्होंने इसकी शुरुआत मोसेली की परमाणु सख्या सारिणी से की। हीलियम (परमाणु संख्या--२) और नियान (परमाणु सख्या १०) स्थायी तत्त्व थे, जो अन्य तत्त्वो से संयोग नही करते थे। अतः इन तत्त्वों के इलेक्ट्रॉन निश्चित रूप से स्थायी या स्थिर रहते होंगे, जिसके कारण रासायनिक क्रिया असम्भव थी। लैंगम्योर ने कल्पना की कि हीलियम के परमाणु के नाभिक मे प्रोटॉन स्थिर रहते है और इसके इलेक्ट्रॉन भी गतिशील नही होते और नाभिक के बाहर के एक कवच मे दो अतिरिक्त इलेक्ट्रॉन घूमते रहते हैं। बोह्र ने जिन विभिन्न कक्षाओं की कल्पना की थी, इन कवचों की बीच की दूरी को भी उसके अनुसार ही रखा गया। लैंगम्योर ने कहा कि सब परमाणुओं की प्रवृत्ति सबसे बाहर के कवच को पूरा करने की होती है। पहले कवच मे दो परमाणु और दूसरे कवच मे आठ परमाणु है।

स्थिर समूह बनाने की इस प्रवृत्ति से तत्त्वों की रासायनिक क्रिया को समझाया जा सकता है। हाइड्रोजन इसलिए बहुत क्रियाशील है, क्योंकि इसके कवच में केवल एक इलेक्ट्रॉन होता है। यह अधूरा रहता है और हीलियम की तरह स्थिर समूह बनाने के लिए इसे एक और इलेक्ट्रॉन की आवश्यकता होती है। नियोन के नाभिक के बाहर दस इलेक्ट्रॉन होने के कारण यह स्थिर रहता है। इसके पहले कवच में दो इलेक्ट्रॉन और बाहर के दूसरे बड़े कवच में आठ इलेक्ट्रॉन होते है, दोनों कवचों का एक ही केन्द्र होता है। अतः दो और दस की परमाणु संख्या के बीच के सब तत्त्व अपने दूसरे कवचों की पूर्णता या अपूर्णता के अनुसार ही सक्रिय होते हैं।

इस बीच भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक कल्पनाएँ की जा रही थी। गणित विशेषज्ञ ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया। परमाणु की रचना के भौतिक और गणित सिद्धान्त अत्यधिक संख्या में प्रतिपादित हो रहे थे। इन नए दृष्टिकोणों के बावजूद परमाणु का नाभिक अनिश्चितता का समूह बना हुआ था। कुछ तत्त्वों के नाभिकों की रचना की कुछ जानकारी मिल चुकी थी। यह जानकारी रेडियम और थोरियम, कोलोनियम और यूरेनियम आदि रेडियमधर्मी तत्त्वों के विच्छेदन सम्बन्धी अनुसंधानों से उपलब्ध हुई। ये तत्त्व अपने नैसर्गिक विच्छेदन द्वारा साधारण तत्त्वों में परिवर्तित हो जाते है और उस समय इस क्रिया को पूरी तरह से नहीं समझा जा रहा था। १९०२ में रदरफोर्ड और फ्रेड्रिक सौडी ने यह पता लगाया कि रेडियम के विच्छेद में तीन किस्म की किरणें और कण निकलते है। रेडियम से एल्फा-कण, बीटा-कण और गामा किरण निकलती हैं। उस समय यह विश्वास था कि रेडियो-सक्रिय तत्त्वों के नाभिकों में इलेक्ट्रॉन और विद्युन्मय हीलियम कण होते हैं। क्या यह बात अन्य तत्त्वों के बारे में भी सही है?

अमरीकी विज्ञान, सिद्धान्त के इस एक और क्षेत्र में कदम बढ़ाने को तैयार था। शिकागो विश्वविद्यालय में मिलिकन की प्रयोगशाला के पास के कमरे में विलियम डी० हारकिन्स ने १९१४-१५ की सर्दियों में परमाणु नाभिक की किसी ऐसी विशेषता का पता लगाने की कोशिश की जो नए वर्गीकरण का आधार बन सके। यह विशेषता नाभिक की स्थिरता थी। उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि सब तत्त्वों के नाभिक हाइड्रोजन और हीलियम के यौगिकों से निर्मित होते हैं। सम परमाणु-संख्या वाले परमाणु विषम परमाणु संख्या वाले परमाणुओं से ज्यादा स्थिर या स्थायी होते हैं। यही कारण है कि वे प्रकृति में अधिक मात्रा में मिलते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि भारी तत्त्व, हल्के तत्त्वों से धीरे-धीरे बनते है और यह क्रिया हाइड्रो-

जन और हीलियम समूहों के सयोग से होती है। जहाँ तक रेडियम का प्रश्न है, हारकिन्स का हाइड्रोजन हीलियम सिद्धान्त वैज्ञानिकों को स्वीकार था, क्योंकि इससे इलेक्ट्रॉन और हीलियम दोनों उपलब्ध होते है।

पर क्या हारकिन्स का सिद्धान्त अन्य परमाणुओं पर भी लागू हो सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हारकिन्स ने रदरफोर्ड के १९१९ के प्रयोग को दोहराने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी आवश्यकता के अनुसार विल्सन क्लाउड चेम्बर में परिवर्तन किया और उन्होंने १९२१ मे नाइट्रोजन और अन्य गैसों पर हीलियम के नाभिक के प्रहार कर कुहरापथ के हजारों फोटो लिए।

इनमे से एक चित्र बहुत विचित्र था। इसमें एक नई बात दिखाई पड़ी थी। यह दुहरा परावर्तन या प्रतिबिम्ब था, जिसकी द्विशाख रेखा की एक रेखा सामान्य परावर्तित रेखा से दस गुना कम मोटी थी। इस एक चित्र के आधार पर ही हारकिन्स यह कह सके कि रदरफोर्ड का यह कथन कि नाइट्रोजन के नाभिक से एक विद्युन्मय हाइड्रोजन-कण निकलता है, अधूरी बात है। परमाणु के इस विच्छेदन मे हारकिन्स ने एक अन्य तत्त्व को भी बनते देखा, क्योंकि इस क्रिया से केवल हाइड्रोजन का ही एक कण नही निकला था, बल्कि एक और तत्त्व आक्सीजन, का भी निर्माण हुआ था। उन्होंने कहा कि इस चित्र से यह स्पष्ट होता है कि हीलियम और नाइट्रोजन के नाभिकों के सयोग से फ्लोरीन का एक अस्थिर परमाणु बना। फ्लोरीन का यह परमाणु तुरन्त विच्छेदित हो गया और इसने हाइड्रोजन के एक विद्युन्मय कण और आक्सीजन के एक परमाणु को जन्म दिया। दूसरे शब्दों में नाइट्रोजन और हीलियम से कृत्रिम रूप से आक्सीजन बनी। हारकिन्स के इस कथन मे कि नाभिक में हीलियम और हाइड्रोजन के नाभिक तथा इलेक्ट्रानों के अलावा अन्य कुछ नही होता, कई विरोधाभास थे। सबसे बड़ी कठिनाई यह समझाने की थी कि धन और ऋण-विद्युत् के कण किस प्रकार एक नाभिक मे एक-दूसरे को तटस्थ या उदासीन किए बिना रह सकते है। दूसरे शब्दों मे, वह कौन सी शक्ति थी, जिसने ऋण-इलेक्ट्रॉनों और धन-प्रोट्रॉनों को एक-दूसरे से मिलने मे रोका, जबकि वे सूक्ष्म-नाभिक में इतने पास स्थित थे ? हारकिन्स को भी यह असंगति दिखाई दी। उस समय तक बीसवी शताब्दी के विज्ञान में भी विचित्र कल्पनाएँ करना समाप्त नही हुआ था। और उन्होंने नाभिक में एक नई यूनिट की उपस्थिति के एक साहसपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन ऊपर से देखने पर बिलकुल गलत मालूम पड़ता था। १२ अप्रैल, उन्होंने अमेरिकन केमिकल सोसायटी की पत्रिका ... ा ...

थे। १९३१ के पतझड़ में संयुक्त राज्य के मानक कार्यालय के एफ० जी० ब्रिकवेड ने तरल हाइड्रोजन का वाष्पीकरण किया और जो थोड़ी-सी बूंदें शेष रह गयीं उन्हें काँच की ट्यूब मे बन्द कर यूरे के पास परीक्षण के लिए भेजा। कोलम्बिया के इस वैज्ञानिक ने इस ट्यूब के भीतर विद्युत् डिस्चार्ज छोड़ा। इसके वर्णक्रम की रेखाओं का अध्ययन किया और हाइड्रोजन के भारी समस्थानिक की घोषणा की, जिसका नाम उन्होने ड्यूटेरियम रखा। ग्रीक भाषा मे इस शब्द का अर्थ दूसरा होता है। हाइड्रोजन का भारी समस्थानिक सामान्य हाइड्रोजन के पाँच या छः हजार भागों मे एक भाग होता है।

इस अनुसंधान को शताब्दी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुसधानो मे बताया गया। इससे अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त हो गया। जब यह देखा गया कि मनुष्य के शरीर मे लगभग ७० प्रतिशत पानी होता है, तो सामान्य पानी के स्थान पर शरीर मे भारी पानी की उपस्थिति के शरीर-क्रिया विज्ञान सम्बन्धी महत्त्व को भली भाँति समझा जा सकता है। हाइड्रोजन के तीन समस्थानिको और आक्सीजन के तीन समस्थानिकों के सयोग से अठारह किस्म का पानी तैयार किया जा सकता है, जिसमें से प्रत्येक के अलग-अलग गुण होगे। कुछ वैज्ञानिको ने कहा कि असंख्य नए यौगिक तैयार किए जा सकते है, क्योंकि हाइड्रोजन तीन लाख कार्बनिक यौगिकों में मौजूद रहती है। सबसे महत्त्व की बात यह हुई कि शरीर क्रिया विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र मे अनुसधान करने वालों ने इसका उपयोग किया। कई वसाओ में सामान्य हाइड्रोजन के स्थान पर भारी हाइड्रोजन का उपयोग किया गया और फिर इन भारी अणुओ के जीवों के शरीर में पहुँचने से क्या परिवर्तन हुए और इन अणुओ ने क्या मार्ग अपनाया, इसका अध्ययन किया गया। इस नए साधन से हम मनुष्य की स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेको समस्याओं को सुलझा सकते है। यह एक और आश्चर्यजनक उदाहरण है, जिससे यह सिद्ध होता है कि विज्ञान की सैद्धान्तिक समस्याएँ मनुष्य के लिए कितनी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। १९३४ में यूरे को इस कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला।

दो महीने से कम अवधि मे ही दो नए कणो का अनुसंधान हुआ। न्यूट्रॉन विशेष रूप से अणु सम्बन्धी अनुसधानों मे सहायक सिद्ध हुआ। इसके अत्यधिक सूक्ष्म आकार को देखते हुए यह इतना ज्यादा भारी है कि हारकिन्स ने कहा कि यदि अंगुश्ताने मे न्यूट्रॉनों को कस कर भर दिया जाए, अंगुश्ताने का भार दस लाख टन होगा। उस समय विज्ञान को परमाणु के नाभिक के रहस्योद्घाटन के लिए रेडियम के विच्छेदन से उपलब्ध एल्फा-कणों से कही अधिक गति से चलने वाले कणो की आवश्यकता थी।

न्यूट्रॉन के अनुसंधान से विज्ञान को परमाणु की रचना की नई जानकारी मिली। हाइड्रोजन के अलावा, जिसका परमाणु-भार एक होता है, प्रत्येक परमाणु मे तीन भिन्न प्रकार के कण इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं। प्रत्येक तत्त्व के परमाणु-भार और उसकी परमाणु-संख्या के अन्तर के बराबर उसमें न्यूट्रॉनों की सख्या होती है। किसी तत्त्व की परमाणु-संख्या उसके नाभिक में उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या के बराबर होती है। अत्यधिक उग्र रासायनिक परिवर्तनो के दौरान भी परमाणु का नाभिक जैसे का तैसा बना रहता है। नाइट्रोग्लिसरीन तक के विस्फोट मे इसमे कोई अन्तर नहीं पड़ता। रासायनिक परिवर्तनो मे नाभिक के बाहर के इलेक्ट्रॉन हिस्सा लेते हैं। रासायनिक क्रिया या परिवर्तन के बारे में यही आशा की जाती है, क्योंकि नाभिक मे उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या में परिवर्तन से वह एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व मे बदल दिया जाता है और यह क्रिया सामान्यतः नहीं होती।

२२ कुछ स्थितियों मे एक तत्त्व दूसरे तत्त्व मे बदलता है। यह परिवर्तन जिसे तत्त्वांतरण कहते हैं, प्रकृति में स्वयं होता है। इस तथ्य का पहला प्रमाण १८६८ मे मिला, जब क्यूरी-दम्पति ने रेडियम का आविष्कार किया। वैज्ञानिकों को पहली बार एक अत्यन्त साधारण बात देखने को मिली। एक पूरी तरह से शुद्ध और साधारण तत्त्व किरणें और कण विकिरित कर रहा था और अन्तत. विच्छेदित होकर अपने से हल्के तत्त्व सीसे मे बदल जाता था। रेडियम से जो इलैक्ट्रॉन और हीलियम परमाणु विकिरित होते है, वे इस तत्त्व के परमाणु के अत्यधिक अस्थिर नाभिक से निकलते है। परमाणु के नाभिक का यह परिवर्तन रासायनिक क्रिया से कही अधिक महत्त्वपूर्ण और बुनियादी होता है। इसे आणविक परिवर्तन कहते है और जहाँ तक रेडियम के विच्छेदन का सवाल है, यह क्रिया कई हिस्सों मे होती है।

तत्त्वो की आवर्त सारिणी मे रेडियम का ८८वां स्थान है। अत. इसकी परमाणु-सख्या ८८ है और इसके नाभिक मे ८८ प्रोटॉन रहते हैं। अब चूंकि इसका भार इसके नाभिक मे उपस्थित प्रोटॉनो और न्यूट्रॉनो की सख्या का योग होता है, अत रेडियम मे २२६—८८, यानी १३८ न्यूट्रॉन होते हैं। रेडियम के नाभिक का यह बडा परिवार अत्यधिक अस्थिर या असन्तुष्ट रहता है। इसका एक सदस्य हीलियम, परमाणु के रूप में घर छोड जाता है, जिसका परमाणु-भार ४ है। इस प्रवास से रेडियम का परमाणु एक अन्य तत्त्व रेडन मे बदल जाता है, जिसका परमाणु भार २२२ और परमाणु-सख्या, ८६ है।

अनेक अन्य आन्तरिक झगडो के बाद कई और सदस्य घर छोड जाते हैं, जिसके फलस्वरूप एक नए तत्त्व पोलोनियम का निर्माण होता है। इस

नए तत्त्व की परमाणु-संख्या ८४ और परमाणु-भार २१० है। पोलोनियम भी बहुत अस्थिर होता है और जल्दी ही यह अपने नाभिक से एक हीलियम कण को बाहर फेंक देता है और स्वयं एक अन्य तत्त्व, सीसे में परिवर्तित हो जाता है, जिसकी परमाणु-संख्या ८२ और परमाणु भार २०६ है।

रेडियम का सीसे में तत्त्वांतरण प्राकृतिक क्रिया है, जो अपने-आप में होती रहती है। हमारा इस पर कोई नियन्त्रण नहीं है। न तो हम इस क्रिया को धीमा कर सकते हैं और न ही इसकी गति बढ़ा सकते हैं। रेडियम के किसी भी टुकड़े का आधा भाग १६२० वर्षों में विच्छेदित हो जाएगा। इस अवधि को रेडियम की अर्ध आयु कहते हैं। अगले १६२० वर्ष में शेष भाग का आधा (यानी आरम्भिक मात्रा का चौथाई) फिर विच्छेदित हो जाएगा और यह क्रम इस प्रकार चलता रहेगा।

जब रेडियम के विच्छेदन की क्रिया से यह स्पष्ट हुआ कि इसके द्वारा अस्थिर नाभिक की रचना में परिवर्तन के अलावा अन्य कुछ नहीं होता, तो वैज्ञानिक इस बात पर विचार करने लगे कि क्या मनुष्य अन्य तत्त्वों में भी यह परिवर्तन ला सकता है, जिनके नाभिक स्थिर है। स्पष्टत कृत्रिम तत्त्वांतरण करने के लिए किसी परमाणु के नाभिक को उद्वेलित करके उसके कुछ भाग को बाहर निकालकर या उसके नाभिक में और प्रोटॉन प्रवेश कराके यह कार्य किया जा सकता है, पर नाभिक में प्रवेश करने की समस्या बहुत बड़ी थी। सबसे पहली बात यह थी कि यह अत्यन्त सूक्ष्म होता है और इसके विच्छेद या इसमें प्रवेश करने के लिए उससे भी छोटे कण की आवश्यकता है। इसके अलावा जिस कण को इस कार्य के लिए चुना जाय, उसकी गति इतनी तेज होनी चाहिए कि वह धनात्मक नाभिक की रक्षा करने वाले विद्युत्-प्रभाव को वेध कर नाभिक में प्रवेश कर सके।

रदरफोर्ड द्वारा १९१९ में मनुष्य के इतिहास में पहली बार कृत्रिम तरीके से तत्त्वांतरण का महान् सफल प्रयोग किए जाने के बाद भी विज्ञान जगत् तत्त्वांतरण की सफलता के प्रति आश्वस्त नहीं था। बहुत से वैज्ञानिक इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि रदरफोर्ड ने रेडियो सक्रिय तत्त्व, रेडियम का उपयोग किया था, जो हीलियम परमाणुओं विकिरित करके स्वयं तत्त्वांतरित होता रहता है। उन्हें प्रकृति की लेनी पड़ी। मान लीजिए ऐसा कोई तत्त्व उपलब्ध नहीं होता, तो क्या जा सकता था? वे चाहते थे कि रेडियो-सक्रिय रेडियम की सहायता कोई वैज्ञानिक किसी अन्य तत्त्व का सच्चा तत्त्वांतरण करके दिखाए, कम किसी अन्य बात के लिए तैयार नहीं थे।

पर यह प्राय असम्भव माँग थी। इसका अर्थ था कि वैज्ञानिकों को एक अत्यधिक सूक्ष्म कण तैयार करना होगा और इसे इतनी अधिक गति से फेंकना होगा, जिसकी कल्पना पहले मनुष्य ने नहीं की थी। इस कार्य के लिए वैज्ञानिकों को एक ऐसी मशीन बनानी होगी, जो किसी इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन या हीलियम के परमाणु को दस हजार मील प्रति सेकण्ड या इससे अधिक गति से फेंक सके। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि विज्ञान एक ऐसी ही मशीन को जन्म देने मे सफल हुआ।

सब प्रयोगशालाओं के अनुसंधानकर्ता इस आवश्यकता को समझ रहे थे। ससार भर की प्रयोगशालाओ मे एक ऐसा शक्तिशाली उपकरण तैयार करने की मित्रतापूर्ण होड शुरू हो गई थी, जिसके द्वारा सूक्ष्म नाभिक पर अत्यधिक तेज गति से चलने वाले कणो से प्रहार कर उसका विच्छेद और विच्छेदन से प्राप्त कणों का अध्ययन किया जा सके।

ऐसी मशीन के निर्माण मे लगे सब वैज्ञानिकों मे अर्नेस्ट आर्लेण्डो लारेंस प्रमुख थे। उनका जन्म कैंटन, साउथ डाकोटा, मे हुआ था। साउथ डाकोटा को एक राज्य का दर्जा मिलने के केवल १२ वर्ष बाद ८ अगस्त, १६०१ को अर्नेस्ट का जन्म हुआ। बचपन मे उन्होने पब्लिक स्कूलों मे अध्ययन किया। बाद मे वे सेंट ओलाफ कालेज और साउथ डाकोटा विश्वविद्यालय मे पढ़ने गए। बेतार के तार से संवाद भेजने मे उनकी दिलचस्पी होने के कारण वे विज्ञान की ओर आकृष्ट हुए। पर कुछ समय तक ऐसा लगा कि वे डाक्टर बनने के लिए ही आगे अध्ययन करेंगे और अन्ततः उन्होने अपना जीवन परमाणु और विकिरण के भौतिकी-सम्बन्धी अध्ययन मे लगा दिया।

लारेंस ने मिनेसोटा विश्वविद्यालय मे भी अध्ययन किया, जहाँ उन्हे प्रोफेसर डब्ल्यू० एफ० जी० स्वान के सम्पर्क में आने का मौका मिला। वे प्रोफेसर स्वान के साथ येल गए। उनके अधीन कार्य किया और १६२५ मे डाक्टरेट लिया। उन्होंने कुछ समय तक नेशनल रिसर्च-फैलो के रूप में काम किया और बाद मे भौतिकी के सहायक प्रोफेसर नियुक्त हुए। जब स्वान फिलाडेल्फिया की बारटोल रिसर्च फाउण्डेशन के अध्यक्ष बनाये गए तो लारेंस कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के आमन्त्रण पर वहाँ चले गए।

१६२६ के वसन्त की एक साँझ को लारेंस को प्रायः अकस्मात् रोल्फ विडेरो का एक लेख मिला। इस भौतिकी-विज्ञानी ने इस लेख मे जो रेखाचित्र दिया था, उसमे वे आकर्षित हुए और फिर बहुत ध्यान से उन्होने इस लेख को पढ़ा। विडेरो ने एक शून्यीकृत नली के भीतर विद्युन्मय पोटाशियम-परमाणुओं

की ऊर्जा को दुगुना करने में सफलता प्राप्त की। उन्होने आरम्भ में जितने वोल्टेज का प्रयोग किया था, वे उसे दुगुना करने मे सफल हुए। यदि वोल्टेज को उपयुक्त समय पर बार-बार कणो की गति बढ़ाने में इस्तेमाल किया जाए तो बहुत कम वोल्टेज से अत्यधिक गति उत्पन्न की जा सकती है। यह विचार एकदम नया नही था। परमाणु-कणो की गति को तेज करने की क्रिया की तुलना झूले में बैठे एक बच्चे की गति से की गई। झूले के बीच में उपयुक्त समय पर बच्चे को हलका सा धक्का देकर झूले को बहुत ऊँचाई तक ले जाया जा सकता है, चाहे प्रत्येक धक्के मे उस बच्चे को वस्तुत बहुत कम दूरी तक ही आगे धकेला गया हो।

लारेंस ने, जो स्वान के अनुसार, अत्यधिक कल्पनाशील और विचारशील थे, इस विचार को अपनाया तथा इसे व्यापक रूप मे आजमाने का निश्चय किया। वे बहुत समय से एक ऐसी विधि की तलाश मे थे, जिससे उनके प्रयोगों के लिए आवश्यक ऊँचा वोल्टेज लगातार उपलब्ध हो सके। वे ऐसी विधि की तलाश में थे, जिससे विद्युत् के ऊँचे करेंट और शून्यीकृत नलियो के जटिल उपकरण की आवश्यकता न पड़े, पर वे अपने प्रयोग मे प्रयुक्त कणो को अत्यधिक गति दे सकें। अब उनके हाथ एक अच्छा सुझाव आ गया था। यह रेखाचित्र देखने के कुछ मिनट के बाद ही उन्होंने अपने नए उपकरण का चित्र बनाना और 'सम्बन्धित गणितसूत्र लिखना शुरू कर दिया। अपने इस उपकरण की आवश्यक बातें उनके दिमाग मे तुरन्त आ गयी। अगले दिन सुबह उन्होंने अपने एक मित्र को कहा कि उनके मस्तिष्क मे एक नया विचार आया है और वे एक नई मशीन बनाने जा रहे है।

इस उपकरण के द्वारा लारेंस विद्युत्कण को एक शक्तिशाली विद्युत् चुम्बक के प्रभाव से मोड़कर एक वृत्त में अत्यधिक तेज गति से घुमाना चाहते थे। उन्होंने यह योजना बनाई थी कि जैसे ही यह कण अत्यधिक शून्यीकृत टंकी, जिसका आकार ढक्कनदार फ्राइंग-पेन जैसा था, की आधी परिधि तक पहुँचेगा, वे इस कण को बार-बार बिजली का झटका देंगे, जिसके फलस्वरूप यह अधिकाधिक तेज गति से निरन्तर बढते हुए वृत्त मे घूमता रहेगा। यह क्रम उस समय तक जारी रहेगा, जब तक कि यह कण शून्यीकृत नली के सिरे पर पहुँच कर एक छिद्र को पार कर सामने लगे चेम्बर या कक्ष मे नहीं पहुँच जाएगा। इस चेम्बर में इस कण को परमाणु के नाभिक पर प्रहार करने में प्रयुक्त किया जाएगा। उन्होंने इस उपकरण के चुम्बक को इस प्रकार लगाने का निश्चय किया था कि कण उस समय निश्चित स्थान पर पहुँचे, जब बिजली की आरम्भिक प्रत्यावर्ती धारा अपनी दिशा बदल रही हो और जब

इसे बिजली के एक अन्य झटके की आवश्यकता हो। कण की गति तेज करने मे अत्यधिक ऊँची आवृत्ति की दोलायमान विद्युत् का उपयोग किया जाना था। उन्हें आशा थी कि इस प्रकार एक हजार वोल्ट की शक्ति को एक हजार वार प्रयुक्त कर उन्हें वही परिणाम मिलेगा, जो एक साथ दस लाख वोल्ट की शक्ति प्रयुक्त करने से मिलता है।

यह एक अत्यधिक साहसपूर्ण योजना थी। पर क्या इसमे सफलता मिलेगी? जनवरी, १६३० तक लारेंस ने अपना पहला चुम्बकीय अनुकम्पन त्वरक तैयार किया, जिसे बाद मे साइक्लोट्रॉन नाम दिया गया। एक विद्युत्-चुम्बक के दोनो ध्रुवो के बीच शून्यीकृत कक्ष था, जिसका व्यास चार इंच था। इसमे अग्रेजी के अक्षर 'डी' के आकार के दो इन्सुलेटेड इलेक्ट्रॉड थे, जिन्हे उच्च आवृत्ति वाले बिजली के प्रत्यावर्ती करेंट से जोडा गया था। इसके मध्य मे टग्सटेन का तार था। शेष मशीन कांच और चमडे की बनी थी। लारेंस ने अपने एक विद्यार्थी एन० ई० एडलेफसेन की सहायता से पहला अनुकम्पन-प्रभाव उत्पन्न किया। उन्हें अपने प्रयोग मे सफलता मिली और उसी वर्ष सितम्बर मे लारेंस ने अपनी इस मशीन और विधि की पहली सार्वजनिक घोषणा की। उन्होने यह घोषणा बर्कले मे राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की बैठक मे की।

आरम्भ में लारेंस का साइक्लोट्रॉन, परमाणु की रचना के सैद्धान्तिक अध्ययन का एक उपकरण था। साइक्लोट्रॉन का पहला कांच का मॉडल बनाने के बाद लारेंस ने एम० स्टेनली लिविंगस्टन की सहायता से उसी आकार का धातु का साइक्लोट्रॉन बनाया। लिविंगस्टन स्नातक-कक्षा के उनके विद्यार्थी थे। इस नई मशीन की सहायता से वे केवल दो हजार वोल्ट के करेंट से ही इतनी अधिक ऊर्जा के हाइड्रोजन-आयनो की धारा उत्पन्न कर सके, जो अस्सी हजार वोल्ट से उत्पन्न हो सकती थी। फरवरी, १६३२ तक लारेंस ने एक हजार डालर की लागत पर एक नया मॉडल बनाया। ग्यारह इंच व्यास का यह उपकरण हाइड्रोजन गैस के आयनीकरण से उपलब्ध प्रोटॉनों मे १२ लाख वोल्ट जितनी ऊर्जा उत्पन्न कर सकता था। अब लारेंस ने बड़े-बड़े प्रयोग शुरू कर दिए थे।

१६३२ की गर्मियो मे लारेंस ने अपनी इस छोटी मशीन की सहायता से लीथियम नामक तत्त्व पर अत्यधिक तेज गति से चलने वाले कणो से प्रहार कर उसे विच्छेदित किया। पश्चिमी गोलार्ध मे कृत्रिम तरीकों से पदार्थ के तत्त्वा-तरण का यह पहला प्रयोग था। यूरोप मे कुछ सप्ताह पहले यह प्रयोग हो

चुका था। २८ अप्रैल, १६३२ को रदरफोर्ड के दो युवक सहायकों, जान डी० कोकक्राफ्ट और ई० टी० एस० वाल्टन ने यह प्रयोग किया था। केवेंडिश प्रयोगशाला के इन वैज्ञानिकों ने ऊँचे वोल्टेज के ट्रांसफॉर्मर-रेक्टिफायर (परिवर्तक-एकदिशाकारी) उपकरण की सहायता से प्रोटॉनों की गति को सात हजार मील प्रति सैकण्ड तक बढ़ाया और इनके प्रहार से लीथियम को हीलियम में परिवर्तित किया। इस प्रकार रेडियो-सक्रिय तत्त्वों के अलावा अन्य रासायनिक तत्त्वों के तत्त्वांतरण की पहली विधि का आविष्कार हुआ।

इस प्रयोग से लारेंस प्रयोगशाला में बहुत उत्तेजना फैल गई। प्रयोगशाला का प्रत्येक वैज्ञानिक इस बात से आश्वस्त था कि वे इतना अधिक वोल्टेज उत्पन्न कर सकते हैं, पहले जिसकी कल्पना भर ही की जा सकती थी। पहले महायुद्ध के समय से ही कैलिफोर्निया में चुम्बक की एक विशाल कास्टिंग बेकार पड़ी थी और लारेंस प्रयोगशाला ने ७५ टन की इस कास्टिंग का अनुसंधान-कार्य में उपयोग करने का निश्चय किया। इसे विश्वविद्यालय की विकिरण प्रयोगशाला में लगाया गया और इसमें आठ टन ताँबे के तार लपेटे गए। १९३६ में लारेंस को इस प्रयोगशाला का निदेशक नियुक्त किया गया था।

साढ़े सत्ताइस इंच के साइक्लोट्रॉन का यह चौथा मॉडेल इस प्रकार बनाया गया था, जिससे पचास लाख इलेक्ट्रॉन-वोल्ट के ड्यूटेरॉन और एक करोड़ इलेक्ट्रॉन वोल्ट के हीलियम-नाभिकों के कई माइक्रोऐम्पीयर उत्पन्न कर सकें। इस विशाल चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव फर्श से रसोईघर के स्टोव जितनी ऊँचाई पर था और इसका व्यास पैंतालीस इंच था। मशीन को चालीस फुट दूर स्थित नियंत्रण बोर्ड से संचालित किया जाता था और इसे चलाने वाले वैज्ञानिक को वेधक विकिरण से बचाने के लिए साइक्लोट्रॉन के चारों ओर उपयुक्त शोषक पदार्थ की दीवार बनायी गई थी। पूरी तैयारी हो जाने के बाद लारेंस और उनके अत्यधिक जोशीले युवक सहायकों ने इस परमाणु तोप के प्रयोग में जरा भी विलम्ब नहीं किया, जो विशाल गारगनटुवान विद्युत् चुम्बक के ध्रुवों के बीच स्थित थी। प्रत्येक उपलब्ध कण को लक्ष्य के रूप में प्रयुक्त परमाणुओं पर इस आशा से वर्षाया गया ताकि ये कण प्रत्येक परमाणु के नाभिक का विच्छेद कर सकें। प्रोटॉनों, हीलियम के नाभिकों, और न्यूट्रॉनों के अलावा ड्यूटेरियम के नाभिकों को भी अत्यधिक तेज गति से आवश्यक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वर्षाया गया। भारी हाइड्रोजन के नाभिक का नाम ड्यूटेरान रखा गया था। लारेंस ने ड्यूटेरान को एक प्रोटॉन और एक न्यूट्रॉन में विभाजित किया था और इस प्रकार न्यूट्रॉनों की संख्या में

हजार गुना वृद्धि की थी। १६३५ तक उन्होंने केवल ड्यूटेरानों से लीथियम पर प्रहार कर हीलियम ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि अन्य तत्त्वों का भी तत्त्वांतरण किया। अब तत्त्वों की आवर्त-सारिणी के प्रत्येक तत्त्व के तत्त्वांतरण की विधि का पता लग गया था और इस विधि से सम्भवतः घटिया धातुओं *को भी कीमियागरों के स्वप्न, स्वर्ण मे परिवर्तित किया जा सकता था।* उनके इस साइक्लोट्रॉन मे १६३६ मे प्लेटीनम (तत्त्व-संख्या ७८) का यह परिवर्तन किया गया।

लारेंस की ख्याति बहुत तेजी से फैली। ३२ वर्ष की उम्र में उन्हें राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी का सदस्य चुना गया। इस समय तक संयुक्त राज्य अमरीका मे वैज्ञानिक प्रतिभा का जमाव निश्चित रूप से पश्चिमी प्रदेशों में बढ रहा था। लारेंस की प्रयोगशाला से युवक अनुसंधानकर्ताओं की एक फौज ही निकली। लारेंस ने अपने इन अनुसंधानकर्ताओ को अन्य विश्वविद्यालयों और औद्योगिक प्रयोगशालाओ मे बनने वाले नए साइक्लोट्रानों को तैयार करने और चलाने का पूरा प्रशिक्षण दिया था। लारेंस का विश्वास था कि नए वैज्ञानिको की ट्रेनिंग और अनुसधान के व्यय को पूरा करने के लिए सहायता मिलनी चाहिए। उन्होने लिखा, "एक ऐसे नए क्षेत्र की महान् सम्भावना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अनुसधान, बुनियादी विचारो मे परिवर्तन, ईजाद और विकास का पारस्परिक सम्बन्ध रहता है। उदाहरण के लिए एक युवक को हमारे परमाणु शक्ति कार्यक्रम मे हिस्सा लेने की ट्रेनिंग देने के लिए कुछ भाषण ही पर्याप्त नहीं हैं, जो कुछ महीनो में ही पुराने और अनावश्यक सिद्ध हो सकते है। हमे इस क्षेत्र मे वर्षों तक लगातार कठिन परिश्रम से अध्ययन करना चाहिए और इस बदलती हुई तस्वीर को समझना चाहिए। बुनियादी समस्याओं के अध्ययन और उनके हल के लिये प्रयोगशालाओं मे किसी प्रमुख वैज्ञानिक के अन्तर्गत काम सीखना सबसे अच्छा है, क्योंकि इस तरीके से शिक्षार्थी को व्यापक अनुभव प्राप्त होता है और वह स्वय नई दिशाओं के निर्धारण मे हिस्सा लेता है। इस क्षेत्र मे प्रवेश करने वाले विद्यार्थियो को अपनी ट्रेनिंग के दौरान किसी-न-किसी समय सरकारी सहायता की आवश्यकता होगी, क्योंकि अनुसधान-कार्य बहुत जटिल और व्ययसाध्य है। और इसके बदले हमारे इस राष्ट्रीय कार्यक्रम को नया जीवन और नई प्रेरणा मिलेगी।"

१६४० तक अमरीका और अन्य देशों में पैंतीस साइक्लोट्रॉन काम कर रहे थे। अगले अठारह वर्षों में केवल संयुक्त राज्य अमरीका मे ही इनकी संख्या लगभग चालीस हो गई और लगभग इतने ही साइक्लोट्रॉन अन्य देशों

में लगाये जा चुके थे। इसके अलावा पाँचों महाद्वीपों में अन्य साइक्लोट्रॉनों का निर्माण हो रहा था। लारेंस से बार-बार इन साइक्लोट्रॉनों को लगाने के लिए सहायता और सलाह माँगी जाती थी। उनका काफी समय अमरीका और अन्य देशों के अनुसंधान-केन्द्रों को अपने विशाल साइक्लोट्रॉन में तैयार नए रेडियो-सक्रिय तत्त्व भेजने में ही लग जाता था। इतनी व्यस्तता के बावजूद वे अपने घर की वर्कशाप में अपने शौक के काम करने का समय निकाल ही लेते थे।

लारेंस को बहुत सम्मान भी मिला। उन्हें अनेकों पदकों से सम्मानित किया गया और साइक्लोट्रॉन और विशेषकर इस मशीन की सहायता से कृत्रिम रेडियो-सक्रिय तत्त्व बनाने के लिए १९४० में उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला। जब लारेंस को इस पुरस्कार के मिलने का समाचार मिला तो उन्होंने कहा, "यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह पुरस्कार मेरी प्रयोगशाला का सम्मान है और इस सम्मान में मैं अपने सब सहयोगियों का समभागी हूँ।" जब १९४२ में सोवियत रूस की विज्ञान अकादमी ने अपने पहले विदेशी सदस्यों का चुनाव किया तो इसमें तीन अमरीकियों को भी शामिल किया गया। ये थे—जी० एन० लेविस, वाल्टर बी० केनन और अर्नेस्ट ओ० लारेंस।

कैलिफोनिया इंस्टिट्यूट आफ टैक्नालाजी की, केलॉग विकिरण प्रयोगशाला में भी परमाणु सम्बन्धी अनुसंधान हुआ। यहाँ एक युवक ने एक अप्रत्याशित वक्राकार कुहरापथ का फोटो लिया, जो अन्त में परमाणु के नाभिक में स्थित एक नया कण निकला। इस अनुसंधान से विज्ञान जगत् में हलचल मच गई। यह युवक कार्ल डी० एंडरसन था, जिसका जन्म १९०५ में न्यूयार्क नगर में हुआ था। और उसने लासएंजिल्स के पॉलिटेकनीक हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टैक्नालॉजी में विद्युत् इंजीनियरी का अध्ययन शुरू किया। दूसरे वर्ष में ही उन्होंने इसे छोड़ भौतिकी का अध्ययन शुरू किया। उन्होंने मिलिकन के अधीन काम करके डाक्टर की उपाधि ली।

१९३० के वसन्त में मिलिकन ब्रह्माण्ड किरणों की ऊर्जा के निर्धारण की विधि की खोज कर रहे थे। ब्रह्माण्ड किरणें अत्यधिक वेधक किरणें होती हैं और उनका विश्वास था कि पदार्थ के परमाणुओं के निर्माण से इन किरणों का घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। उन्होंने एण्डरसन को एक ऐसी मशीन बनाने का काम सौंपा, जिसमें शक्तिशाली चुम्बकों की सहायता से इन किरणें मोड़ा जा सके।

२४ हजार गास शक्ति का, चुम्बकीय प्रभाव-क्षेत्र उत्पन्न करने में सक्षम, एक शक्तिशाली चुम्बक के ध्रुवों के बीच पन्द्रह सेण्टीमीटर व्यास और दो सेण्टीमीटर गहराई वाला विल्सन क्लाउड चेम्बर रखा गया। यह अपनी किस्म का पहला क्लाउड चेम्बर था। चुम्बक के एक ध्रुव में बने छिद्र में फोटो लेने की व्यवस्था की गई थी, जिससे किसी ऐसे कण का पता चल सके जो चुम्बकीय प्रभाव से एक वृत्त के चाप के रूप में परावर्तित हुआ हो। क्लाउड चेम्बर की गैस के परमाणुओं पर ब्रह्माण्ड किरणों के प्रहार के प्रभाव से मूविंग-फिल्म से हजारों चित्र लिये गये। इनमें से कुछ किरणें तीस लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा की थी।

२ अगस्त, १९३२ के तीसरे पहर जब एण्डरसन ने एक फिल्म को धोकर साफ किया तो उन्हें एक विच्छेदित परमाणु का चित्र दिखाई दिया। इस चित्र जैसी रेखा को इससे पहले कभी नहीं देखा गया था। पहले एण्डरसन ने सोचा कि अचानक एक इलेक्ट्रॉन के प्रकीर्णन से दिशा-परिवर्तन के कारण ऐसा हुआ है या सम्भवत यह कोई प्रोटॉन है, क्योंकि वक्र की दिशा ऋणात्मक इलेक्ट्रॉनों की दिशा से विपरीत थी। इससे स्पष्ट होता था कि यह कण धनात्मक है। इस कण ने छह मिलीमीटर मोटी सीसे की प्लेट को पार किया था, जिससे इसकी अत्यधिक वेधक शक्ति का पता चलता था और इतनी अधिक वेधक शक्ति किसी ज्ञात इलेक्ट्रॉन में नही थी। इसके फॉग-ट्रैक या कुहरा-पथ की लम्बाई भी इसी वक्रता के प्रोटॉन के पथ से दस गुना अधिक थी, जिससे यह सिद्ध होता था कि यह कण धनात्मक प्रोटॉन नही हो सकता। ऐसा लगता था कि यह कुहरा-पथ किसी ऐसे कण का है, जो धनात्मक तो है, पर जिसका द्रव्यमान केवल एक ऋणात्मक इलेक्ट्रॉन जितना ही है। यह कुहरा-पथ किसी नए कण—एक धनात्मक इलेक्टॉन का लगता था।

एण्डरसन ने अपने प्रयोग को दुहराया और अनेक फोटो लिये, जिससे वे उस निष्कर्ष पर पहुँचे, जिसे उन्होंने सितम्बर, १९३२ मे प्रकाशित किया। उन्होंने इस नए कण का नाम पोजीट्रॉन रखा।

आगे अध्ययन के बाद एण्डरसन ने घोषणा की कि "ऐसा लगता है कि जब विकिरण पदार्थ को बेधता है, तो विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण पोजीटॉन उत्पन्न करता है। यह इसका सामान्य गुण मालूम पड़ता है।" यदि विकिरण की ऊर्जा दस लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट से कम होती है तो परमाणुओं से पोजीट्रॉन नहीं निकलते। पोजीट्रॉन का स्वतन्त्र अस्तित्व बहुत कम समय का होता है। सामान्यत: यह एक सैकड के एक अरबवें हिस्से तक ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व

कायम रख सकता है। पोजीट्रॉन के अनुसंधान के लिए एण्डरसन १९३६ में नोबेल पुरस्कार लेने स्टाकहोम गए।

१९३२ का वर्ष विज्ञान के इतिहास का बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ष सिद्ध हुआ। इस वर्ष चार महान् अनुसंधान हुए। पहली बार न्यूट्रॉन, भारी हाइड्रोजन और पोजीट्रॉन को प्रकाश में लाया गया और पहले व्यावहारिक साइक्लोट्रॉन ने भौतिकी के अनुसंधान को एक नया उपकरण दिया। इस सम्बन्ध मे यह कहना आवश्यक है कि इनमे से पहले तीन अनुसंधान युवक अमरीकी वैज्ञानिको ने किए, जबकि चौथे अनुसंधान की भविष्यवाणी एक अमरीकी ने की थी, पर इसका निर्माण एक अंग्रेज ने किया। इस काल मे अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा प्रथम कोटि के अनुसधानों का क्रम उच्च शिखर पर पहुँच गया था।

अमरीकी वैज्ञानिको की प्रतिभा का एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिलना था। १९३६ में कार्ल डी० एण्डरसन ने एक और महत्त्वपूर्ण अनुसधान किया। यह अनुसंधान भी ब्रह्माण्ड किरण के बारे मे ही था। शिकागो-विश्वविद्यालय के रावर्ट ए० मिलिकन और आर्थर एच० काम्पटन इस क्षेत्र मे भिन्नतापूर्ण होड में लगे थे। इस होड़ ने इन लोगों को संसार के विभिन्न भागों मे आकाश की ऊँचाइयों मे इस आशा से नए वैज्ञानिक आँकडे इकट्ठा करने के लिए भेजा कि शायद वे सबसे पहले ब्रह्माण्ड किरणों की रचना और इसके प्रभावों सम्बन्धी निश्चित अनुसंधान कर सकें।

१९३५ की गर्मियो मे एण्डरसन ने छः सप्ताह तक पाइसपीक की चोटी पर से दस हजार फोटो लिये, जिससे उन्हे ऊपरी वायुमडल में ब्रह्माण्ड किरणो के परमाणुओ के टकराने से उत्पन्न प्रभाव का कोई प्रमाण मिल सके। उनके साथ सेठ एच० नेडरमेयर भी कार्य कर रहे थे, जो उनके अधीन अपनी डाक्टर की उपाधि के लिए अध्ययन कर रहे थे। कैलिफोर्निया लौटने पर उन्होने इन फोटोग्राफों का सावधानी से अध्ययन किया। उन्होने कुहरापथों की लम्बाई, वक्रता और वेधनशक्ति को मापा। अगस्त, १९३६ मे उन्होंने अन्य बातों के अलावा कहा कि "लगभग १ प्रतिशत फोटोग्राफों से अत्यधिक आयनीकृत कणों का पता चलता है, जो अधिकांश मामलो में न तो इलेक्ट्रॉन हैं और न प्रोटॉन। वे एक ऐसे आणविक विच्छेदन से उत्पन्न होते हैं, जिसे इससे पहले नही देखा गया। उनका स्रोत ब्रह्माण्ड किरणो मे है।" अगले वर्ष आगे प्रयोगों के बाद, जिनमे उन्होने क्लाउड चेम्बर के बीच एक सेंटीमीटर मोटी प्लेटीनम की प्लेट लगाई थी, उन्होंने घोषणा की कि "उन्हें एक ऐसे नए किस्म के कण अस्तित्व का पता चला है, जिसे तुरन्त या आसानी से समझाया

सकता, केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसका द्रव्यमान एक सामान्य इलेक्ट्रॉन से अधिक है।" इस कण के अनुसंधानकर्ताओं ने इसका नाम मेसोट्रॉन रखा, जिसका अर्थ मध्यकण होता है, क्योंकि इसका भार इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के बीच है। बाद में भारत के आणविक भौतिकी विज्ञानी एन० जे० भाभा ने इसका नाम मेसन सुझाया और अब इसी नाम का व्यवहार होता है।

१९३९ में लारेंस ने अपने ३७ इंच के साइक्लोट्रॉन के बाद ६० इंच का प्रसिद्ध साइक्लोट्रॉन बना लिया था। यह साइक्लोट्रॉन आयुर्विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान और कैंसर की चिकित्सा के लिए बनाया गया था। इस मशीन के लिए आवश्यक धन, कैमिकल फाउण्डेशन के फ्रांसिस पी० गारवन, राकफेलर फ़ाउण्डेशन और नेशनल एडवाइजरी कैंसर काउंसिल ने दिया। विलियम एच० क्रॉकर ने इसके लिए आवश्यक इमारत के लिए धन दिया। आज यह इमारत कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में विलियम एच० क्रॉकर विकिरण प्रयोगशाला के नाम से स्थित है। ६० इंच के इस साइक्लोट्रॉन से, जिसका भार २२० टन है, १,६०,००,००० वोल्ट ड्यूटेरान के सौ माइक्रोऐम्पीयर और ३ करोड़ २० लाख वोल्ट हीलियम-आयनों का एक माइक्रोऐम्पीयर मिलता है। भारी हाइड्रोजन की "मृत्यु किरणें", जिनका व्यास कई इंच था, ६० करोड़ परमाणु प्रति सैकंड फेंकती। ये परमाणु मशीन की खिड़की से पाँच फुट की दूरी पर २५ हजार मील प्रति सैकंड की रफ्तार से फेंके जाते। यह प्रभाव ३० टन शुद्ध रेडियम के विच्छेदन के बराबर है, जिसका मूल्य उस समय ३ करोड़ २० लाख डालर प्रति पौंड था।

जब इस साइक्लोट्रॉन को सफलता और कुशलतापूर्वक चलाया जा चुका तो लारेंस ने इससे भी अधिक शक्तिशाली मशीन बनाने की बात सोची। जब १९३२ में उन्होंने अपने अत्यन्त छोटे साइक्लोट्रॉन के बाद २७॥ इंच का साइक्लोट्रॉन बनाया तो उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे केवल सैद्धान्तिक भौतिकी-विज्ञानी ही नहीं हैं। उन्होंने इंजीनियरिंग के क्षेत्र में प्रवेश किया था। वे बड़े-बड़े यंत्रों को लगाने का काम हाथ में ले सकते थे। पाँच हजार टन का साइक्लोट्रॉन बनाने की बात से वे भयभीत नहीं हुए। वे ६० इंच के साइक्लोट्रॉन के बाद १८४ इंच का साइक्लोट्रॉन बनाने के लिए तत्पर थे। वे कुछ वैज्ञानिकों के इस विश्वास के बावजूद यह काम करने को तैयार थे कि साइक्लोट्रॉन की शक्ति २ करोड़ इलैक्ट्रॉन वॉल्ट तक ही सीमित रहती है। लारेंस ने एक नए साइक्लोट्रॉन का डिजाइन तैयार किया, जिसके द्वारा ६० मील प्रति सैकण्ड की गति के ड्यूटेरान उपलब्ध हो सकेंगे। इसके अलावा

इससे २० करोड़ इलैक्ट्रॉन वोल्ट से अधिक ऊर्जा के अन्य परमाणु-कण भी उपलब्ध करने का उनका विचार था। उनको आशा थी कि यह मशीन एक राष्ट्रीय संस्था और सैकड़ों अनुसंधानकर्ताओं के लिए तीर्थस्थान बन जाएगी।

इण्टरनेशनल एजूकेशन बोर्ड ने इस योजना के लिए ११ लाख ५० हजार डालर दिए। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पास चार्टर हिल पर एक स्थान चुना गया और अगस्त, १९४० में संसार का सबसे बड़ा साइक्लोट्रॉन बनाने का काम शुरू हो गया। इस साइक्लोट्रॉन के मुख्य भाग को पहाड़ी के भीतर लगाया गया। दूर से ही इस मशीन को चलाने के लिए गिलमन-हाल से साइक्लोट्रॉन की इमारत तक जमीन के भीतर बिजली का केबुल बिछाया गया और जुलाई, १९४१ में २४ पार्श्व की, ९० फुट ऊँची और १६० फुट व्यास की इमारत बनाने का काम शुरू हुआ।

उस वर्ष ७ दिसम्बर को पर्ल हारबर पर बमबारी से भी इस योजना का कार्य बन्द नहीं हुआ, जो इस समय तक ७० प्रतिशत पूरी हो चुकी थी। यह मशीन मई, १९४२ में बनकर तैयार हुई। इस बात पर सहमति प्रकट की गई कि युद्ध-प्रयत्नों की दृष्टि से इस नई मशीन द्वारा अनुसंधान-कार्य जारी रखा जाना चाहिए। युद्ध सम्बन्धी किसी विशेष कार्य के लिए इस मशीन का ३,७०० टन का चुम्बक कुछ समय के लिए अन्यत्र ले जाया गया। अन्य अनेक व्यावहारिक और अत्यन्त आवश्यक समस्याओं के बावजूद यह पुराना और जटिल प्रश्न बना हुआ था कि क्या कभी परमाणु के गर्भ में छिपी अपार शक्ति के भंडार तक पहुँचने का तरीका निकाला जा सकेगा? भौतिकी के प्रत्येक नोबेल-पुरस्कार-विजेता का विश्वास था कि यह लक्ष्य पूरा हो सकता है।

इस सम्बन्ध में लारेंस ने कहा कि "हम इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि हमारे सामने एक ऐसा प्रदेश है, जिसमें हमें एक ऐसा खजाना मिल सकता है, जो आज तक मिले सब खजानों से बहुत बड़ा होगा। हमें इससे परमाणु के गर्भ में छिपे असीमित ऊर्जा भंडार की कुंजी मिल सकती है।" उस समय लारेंस इससे बहुत अधिक बात जानते थे, क्योंकि वे इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना के मध्य में थे। पर वे इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते थे, यह सर्वाधिक गोपनीय था।

अध्याय ५

एनरिको फर्मी

(१६०१-१६५४)

अणुशक्ति का अनुसंधान और नियंत्रण करने वाले व्यक्ति

मलानचेज के पास एक सेनिटोरियम में मेरी क्यूरी की मृत्यु के ठीक एक महीने बाद ४ जून, १६३४ को विज्ञान-जगत् को दि न्यूयार्क टाइम्स में प्रकाशित एक समाचार से एक और गहरा धक्का पहुँचा। इस समाचार में लिन्सी, रोम की इटालियन अकादमी, की एक बैठक का विवरण दिया गया था। इटली में प्रायोगिक विज्ञान फिर उस दिशा में सक्रिय हो गया था, वर्षों पहले जिसका आभास मिला था।

अकादमी की बैठक मे भाषण करते हुए सेनेटर ओरसो मारियो कोरबिनो ने घोषणा की कि उस समय ज्ञात, आवर्त सारिणी में वर्णित, तत्त्वों से आगे एक नये तत्त्व का आविष्कार हुआ है। अकादमी की इस बैठक में राजा विक्टर इमानुएल भी उपस्थित थे। यह नया तत्त्व यूरेनियम के बाद आवर्त सारिणी में आने वाला तत्त्व था। यह यूरेनियम से अधिक भारी था। कुछ क्षेत्रों में बड़ी प्रसन्नता से इस घोषणा का स्वागत हुआ, पर कुछ ऐसे वैज्ञानिक भी थे, जो इस समाचार से चिन्तित हो गए और कुछ ने इसके प्रति अविश्वास प्रकट किया। इन्हें यह स्मरण था कि पिछली शताब्दी में तैंतीस नए रासायनिक तत्त्वों के आविष्कारों की घोषणा की गई। पर अन्त में इनमें से प्रत्येक, ईमानदारी से हुई एक गलती निकला। वस्तुतः ऐसे रासायनिक तत्त्वों का दावा किया गया था, जिनका अस्तित्व ही नहीं था। तो क्या आश्चर्य कि एक नए तत्त्व के आविष्कार की घोषणा पर भी वैज्ञानिकों को विश्वास न हुआ हो।

पर जिस वैज्ञानिक के नाम से इस आविष्कार की घोषणा की गई थी, वह सनसनी में विश्वास रखने वाला अनुसंधानकर्ता नहीं था। इस युवक वैज्ञानिक

को परमाणु-वैज्ञानिक के रूप में उस समय तक पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी। एनरिको फर्मी का जन्म २९ सितम्बर, १९०१ को रोम में हुआ था और वे अपने माता-पिता की तीन संतानो मे सबसे छोटे थे। १७ वर्ष की उम्र में एनरिको, पीसा गए और उन्होने विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। एक्स-किरण के सम्बन्ध मे उन्होंने जो अनुसंधान-कार्य किया था, उस पर थीसिस लिखी और उन्हे २१ वर्ष की उम्र में डाक्टरेट मिला। वे आगे अध्ययन के लिए जर्मनी और नीदरलैंड गए तथा इटली लौटने पर पहले रोम और बाद मे फ्लोरेंस विश्वविद्यालय मे अध्यापन किया।

एक आदर्श परिकल्पित गैस पर उन्होने लेख लिखा, जिसकी व्यापक चर्चा हुई और उन्हे भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में रोम विश्वविद्यालय में वापस बुलाया गया। कोरबिनो ने उनके लिए सैद्धान्तिक भौतिकी के प्रोफेसर का पद विशेष रूप से बनाया था और फर्मी के माध्यम से भौतिकी-विभाग को गठित करने का निश्चय किया था। २९ वर्ष की उम्र में वे इटली की रॉयल अकादमी के सदस्य बन गए। बेनितो मुसोलिनी द्वारा सस्थापित इस अकादमी के वे सबसे कम उम्र के सदस्य थे। अमरीका के परमाणु वैज्ञानिक उन्हे अच्छी तरह जानते थे। उन्होने १९३० की गर्मियों मे मिशिगन विश्वविद्यालय मे विकिरण के क्वांटम-सिद्धान्त पर भाषण किए थे और तीन वर्ष बाद वे पुन. अमरीका लौटे। वे एक ऐसे विशिष्ट अनुसंधानकर्ता और सैद्धान्तिक भौतिकी विज्ञानी थे, जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती थी। ससार भर के वैज्ञानिको ने नए तत्त्व के आविष्कार की रिपोर्ट बड़े ध्यान से पढी। सवाल उठा कि उन्होने यूरेनियम से भारी यह नया तत्त्व किस प्रकार बनाया?

कोई भी जटिल कार्बनिक यौगिक कृत्रिम तरीके से बनाना हमेशा बहुत महत्त्वपूर्ण काम समझा जाता था। पर फर्मी ने तो स्पष्टतः इससे कही अधिक काम किया था। उन्होने स्रष्टा की भूमिका अदा की थी। यह समाचार दिया गया था कि उन्होने मानवता को एक नया तत्त्व दिया है। एक ऐसा तत्त्व जिसे स्वय प्रकृति ने भी इससे पहले उद्घाटित नही किया। यह वस्तुतः एक आधुनिक चमत्कार के जैसी बात थी।

कोरबिनो ने समाचार दिया था कि युवक फर्मी ने न्यूट्रॉनों को प्रक्षिप्त करके यह कार्य किया था। उन्होंने इस कण का चुनाव इसलिए किया था, क्योंकि यह अत्यधिक सघन और विद्युत् दृष्टि से उदासीन होता है। उन्होंने रेडियम से विकिरित हीलियम नाभिक को बेरेलियम पर बरसा कर न्यूट्रॉन की यह धारा उपलब्ध की थी। यह सुनने के बाद कि फ्रेडिक और आईरीन जोलियट

क्यूरी ने जनवरी, १६३४ में किस प्रकार कृत्रिम रेडियो-धर्मिता का आविष्कार किया है, फर्मी ने एल्फा-कणों के स्थान पर न्यूट्रॉनों का प्रयोग कर वही परिणाम उपलब्ध करने का निश्चय किया, जो उक्त फ्रांसीसी दम्पति ने किया था। सैद्धान्तिक अध्ययन को छोड़ प्रयोगों की दुनिया में आकर फर्मी ने सब रासायनिक तत्त्वों पर न्यूट्रॉनों के प्रभावों का अध्ययन शुरू किया।

उन्होंने आवर्त्त-सारिणी के पहले आठ तत्त्वों की आजमायश की, पर कोई परिणाम नहीं निकला। नौवें तत्त्व फ्लोरीन के उपयोग से सफलता की कुछ आशा बँधी। उन्होंने अपने पाँच युवक सहयोगियों को बुलाया और तेजी से इस सम्बन्ध में अनुसंधान किए। फिर यूरेनियम की बारी आई। उन्हें आशा थी कि न्यूट्रॉन, तत्त्व-संख्या-६२, यानी यूरेनियम के नाभिक को वेधने में सफल होंगे और इसके फलस्वरूप एक प्रोटॉन पीछे रह जाएगा जो यूरेनियम के नाभिक में उपस्थित ६२ प्रोटॉनों से मिलकर एक नया परमाणु बनाएगा, जिसके नाभिक के प्रोटॉनों की संख्या ६३ होगी या दूसरे शब्दों में यह ६३ वाँ तत्त्व होगा।

यह प्रयोग सफल रहा और मैंगनीज जैसा एक नया तत्त्व तैयार हुआ। इसके अलावा आवर्त्त-सारिणी के ६३ वें स्थान में भी यह बिल्कुल ठीक-ठीक बैठा। प्रकृति ने इस तत्त्व को पृथ्वी पर उत्पन्न नहीं किया, ऐसा विश्वास था, क्योंकि यह अत्यधिक रेडियो-सक्रिय था और इसकी अर्ध-आयु केवल तेरह मिनट की थी। इस आविष्कार से कुछ इटली-निवासी इतने अधिक उत्तेजित हुए कि उन्होंने इसका नाम इटेलियम रखने का सुझाव दिया।

पर फर्मी बहुत सतर्क वैज्ञानिक थे। उनके समक्ष जो वैज्ञानिक जानकारी थी, उससे वे पूरी तरह आश्वस्त नहीं हुए थे। उन्होंने विज्ञान-जगत् से अनुरोध किया कि वह कुछ समय तक अपना अन्तिम निर्णय स्थगित रखे और अधिक जानकारी की प्रतीक्षा करे, जिससे इस बात की पुष्टि हो सके। उन्होंने अपने इस तत्त्व का नामकरण करने से इंकार कर दिया। फर्मी सनसनी फैलाने वाली बातों से घृणा करते थे। लेकिन इस मामले में वे एक बहुत बड़ी बात में चूक गए। यह इतनी बड़ी बात थी कि यदि समय से इसका उपयोग कर लिया जाता तो दुनिया की तस्वीर बिल्कुल भिन्न होती। इस बीच नाजीवाद इटली में भी पहुँच गया था। यहाँ भी जर्मनी के यहूदी-विरोधी कानून लागू कर दिए गए थे। एनरिको फर्मी का जन्म रोमन-कैथोलिक परिवार में हुआ था, पर उन्होंने छ वर्ष पूर्व एक यहूदी लड़की लारा कैपन से विवाह कर लिया था। उन्हें फासिज्म में विश्वास नहीं था, क्योंकि इस व्यवस्था में मनुष्य के बुनियादी

अधिकार समाप्त कर दिए जाते हैं और इटली के तानाशाह गैर-वैज्ञानिक उच्च जाति के सिद्धांत में भी विश्वास रखते थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी और दो बच्चों सहित इटली छोड़ने का निश्चय किया। पर यह आसान काम नहीं था। सौभाग्यवश कुछ ऐसी घटनाएं घटी, जिनसे यह सम्भव हो सका। नवम्बर, १९३८ में उन्हें स्टाकहोम से टेलीफोन से समाचार मिला कि उन्हें "न्यूट्रॉन प्रहार द्वारा एक नए रेडियो सक्रिय तत्त्व का पता लगाने और धीमी गति से चलने वाले न्यूट्रॉनों से प्रेरित अणु-प्रतिक्रिया के अनुसधान के लिए" नोबेल पुरस्कार दिया गया है। उन्हें अपने परिवार-सहित स्वीडन जा कर यह पुरस्कार लेने की इजाजत दी गई। जैसी कि उन्होंने गुप्त योजना बना रखी थी, फर्मी-परिवार कभी न लौटने के लिए इटली से रवाना हुआ। उन्होने पुरस्कार लेने के बाद स्वीडन के राजा को फासिस्ट सलाम नही किया, जिसके लिए इटली के अखबारों ने उनकी घोर भर्त्सना की। इसके बाद वे जहाज द्वारा अमरीका रवाना हो गए, जहां वे २ जनवरी, १९३९ को पहुँचे और उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भौतिकी का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। इस प्रकार वे फर्मी, जिन्हें अणुयुग का प्रमुख निर्माता बनना था, सयुक्त राज्य आने वाले इटली के राजनीतिक या धार्मिक शरणार्थियो मे भी प्रमुख रहे।

हिटलर और मुसोलिनी द्वारा सत्ता हथियाने के बाद फर्मी ही पहले वैज्ञानिक नही थे, जो यूरोप छोड़ कर अमरीका गए। १९३३ में आइस्टीन के अमरीका जाने के बाद अनेकों प्रमुख वैज्ञानिक अमरीका पहुँचे। जेम्स फ्रैंक, विक्टर हेस, पीटर डेबी, ओटो लोएवी और अल्बर्ट सेंट जार्जी को पहले ही नोबेल पुरस्कार मिल चुका था और ओटोस्टर्न तथा फ्रिट्ज लाइपमाँ आदि वैज्ञानिको को अमरीका में कुछ वर्ष कार्य करने के बाद यह महाव् पुरस्कार मिला। इसके अलावा अनेको अन्य वैज्ञानिक देश भर की प्रयोगशालाओं मे विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे अमरीकी अनुसधानकर्ताओ के कंधे-से-कंधा मिला कर काम कर रहे थे। यूरोप मे १८४८ की राजनीतिक उथल-पुथल के बाद इतनी बडी सख्या मे प्रथम कोटि के वैज्ञानिक अमरीकी विज्ञान को नई दिशा देने के लिए अमरीका नही पहुँचे थे।

अमरीका पहुँचने के पांच वर्ष पहले फर्मी एक ऐसे अनुसधान के समीप पहुँच गए थे, जो ससार को हिला सकता था। वे इसमे चूक गए और बाद मे उन्होने इन शब्दो मे इसका कारण बताया : "उस समय हम इस बात की पर्याप्त कल्पना न कर सके, कि यूरेनियम का और किसी भी अन्य तत्त्व मे अन्य विधि से भी विखंडन हो सकता है। इसके अलावा हमें रसायनशास्त्र का इतना

ज्ञान भी नहीं था कि यूरेनियम के विखडन से प्राप्त कणों को अलग-अलग कर सकें। हमारा विचार था कि इन कणों की संख्या लगभग चार है, जबकि वस्तुतः इनकी संख्या लगभग पचास थी।"

जैसा कि इतिहास ने आगे चल कर सिद्ध किया, यह चूक बहुत सौभाग्य-पूर्ण रही, क्योंकि बर्लिन-डाहलेम मे १६३८ में अणु रसायनशास्त्र सम्बन्धी जो अनेकों प्रयोग हुए, उनसे ससार भर मे इतनी उत्तेजना फैली कि सनसनी-खेज समाचारो को छापने के विरोधी अखबारो को भी अपने मुख्य पृष्ठों पर बडी-बडी सुर्खियों मे ये समाचार छापने पडे। कैसर विलहेल्म इस्टिट्यूट फार केमेस्ट्री मे, जो हिटलर की चांसलरी से कुछ मील की दूरी पर ही थी, कुछ अनुसधानकर्त्ता उन प्रयोगों को दोहराना चाहते थे, जो फर्मी ने १६३४ में रोम मे किए थे।

किसी वैज्ञानिक ने सुझाव दिया था कि तेरह मिनट की अर्ध-आयु के जिस तत्त्व का फर्मी ने अनुसधान किया है, वह सम्भवतः प्रोटेक्टिनियम का एक समस्थानिक (आइसोटोप) है, न कि आवर्त-सारिणी में यूरेनियम के बाद आने वाला तत्त्व, जैसा कि समझा जा रहा है। इस बात ने कैसर विलहेल्म सस्था के ओटोहान और लीस मिटनर का ध्यान आकर्षित किया, क्योंकि उन्होंने ही पहले विश्व-युद्ध के दौरान १६१७ मे प्रोटेक्टिनियम का अनुसंधान किया था। उन्होने फर्मी के प्रयोगों को दोहरा कर यह पता लगाने का भी निश्चय किया कि क्या वस्तुत. फर्मी को भी प्रोटेक्टिनियम मिला है।

इन परीक्षणो के दौरान फ्रीट्ज स्ट्रासमन भी हान के साथ आ मिले और आगे प्रयोग किए गए। यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों से प्रहार करने के बाद वे इसमे उपलब्ध कणों का बहुत सावधानी से रासायनिक विश्लेषण करने लगे। उन्हे आशा थी कि इन कणों में फर्मी के यूरेनियम से भारी तत्त्व के अलावा रेडियम भी मिल सकता है। वे रेडियम की खोज कर रहे थे, पर उन्हे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उन्हे इसके स्थान पर बेरियम, यानी आवर्त-सारिणी का ५६वां तत्त्व मिला। उन्होने सोचा यह असम्भव है। अब तक लारेंस और उनके सहयोगियों के तत्त्वांतरण परीक्षणो मे भारी परमाणुओं का बहुत छोटा भाग विखण्डित हुआ या बहुत छोटे परमाणु कण किसी नाभिक में मिले, पर अब सबसे भारी, ज्ञात तत्त्व को बड़े-बडे कणों में विखडित किया जा सका। यह एक ऐसी क्रिया थी, जो "अणु भौतिकी के पहले सब अनुभवों से भिन्न थी।"

हान और स्ट्रासमन ने यूरेनियम-परमाणु के विखडन से बेरियम मिलने की सूचना ६ जनवरी, १६३६ को दी और दो महीने बाद इसका विवरण डाइ

नेटरवाइसेलशाफ्टेन में प्रकाशित हुआ। हान इस प्रयोग के रासायनिक परिवर्तन के अध्ययन में ही खो गए और ऊर्जा-परिवर्तन की कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बात की ओर उनका ध्यान नहीं गया।

लेकिन गणित-भौतिकी विज्ञानी लीस मिटनर ने तुरन्त यह अनुभव किया कि यूरेनियम के नाभिक में एक नई और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटी है। लीस मिटनर ने जीवनपर्यन्त जर्मनी में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, पर यहूदी महिला होने के कारण नाजियों ने उन्हें गिरफ्तार कर कन्सेनट्रेशन कैम्प में भेजने का निश्चय किया। यह वह समय था, जब जर्मन विश्वविद्यालयों के गैर-आर्य तथा अन्य बुद्धिजीवियों को विश्वविद्यालयों से हटाकर उन पर घोर अत्याचार किए जा रहे थे। १९३८ की गर्मियों में इस ६१-वर्षीय महिला वैज्ञानिक ने निश्चय किया कि "अब समय आ गया है कि मुझे अपनी गुप्त जानकारी सहित इस देश से भाग निकलना चाहिए। मैं यह बहाना बनाकर, कि मैं एक सप्ताह की छुट्टी बिताने हालैंड जा रही हूँ, रेलगाड़ी पर सवार हुई। हालैंड की सीमा को मैंने आस्ट्रियन पासपोर्ट से पार किया और हालैंड में मैंने स्वीडन का प्रवेश-पत्र उपलब्ध किया।" यह स्पष्ट था कि मिटनर कन्सेनट्रेशन कैम्प की यातनाओं से भागना चाहती थी, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात उनके मन में यह थी कि उन्होंने और उनके सहयोगियों ने यूरेनियम के विखंडन के जो प्रयोग किए हैं, उनके पास उनका एक नया और विशेष स्पष्टीकरण है, जो इतिहास के क्रम को बदल सकता है।

स्टाकहोम से लीस मिटनर कोपेनहेगन गयी। यहाँ उनके भतीजे ओटो आर० फ्रिश, नील्स बोह्र की प्रयोगशाला में काम कर रहे थे। फ्रिश भी जर्मन शरणार्थी थे। उन्होंने मिलकर हान और स्ट्रासमन के प्रयोगों को दोहराया और पहली बार सही रूप से बताया कि यूरेनियम-परमाणु के नाभिक के विखंडन से लगभग समान आकार के जो बेरियम और क्रिप्टान तत्त्व के दो परमाणु तैयार होते हैं, इनके अलावा कुछ और छोटे-छोटे कण भी उपलब्ध होते हैं। उन्होंने ब्रिटेन की विज्ञान पत्रिका **नेचर** को एक पत्र भेजा, जिस पर १६ जनवरी, १९३९ की तारीख पड़ी थी और कुछ सप्ताह बाद यह प्रकाशित हुआ। उन्होंने इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को, जिसमें यूरेनियम, बेरियम और क्रिप्टान में परिवर्तित होता है, **विखंडन** की संज्ञा दी।

इस आणविक विखंडन से, जैसी कि उन्होंने भविष्यवाणी की, लगभग बीस करोड़ इलेक्ट्रॉन वोल्ट जितनी आणविक ऊर्जा उत्पन्न होती है। मिटनर ने सही रूप से कहा कि इतनी अधिक ऊर्जा की उत्पत्ति यूरेनियम के कुछ

द्रव्यमान के आइस्टीन के समात्रा-ऊर्जा नियम के अनुसार ऊर्जा में परिवर्तित होने से होती है।

१६०५ मे एल्बर्ट आइस्टीन ने अपने आपेक्षिकता सिद्धान्त के प्रतिपादन के समय यह घोषणा की थी कि द्रव्यमान और ऊर्जा मे कोई मौलिक अन्तर नहीं है। उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा के अनुसार ऊर्जा मे वस्तुत. द्रव्यमान होता है और द्रव्यमान वस्तुत. ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी पुष्टि में उन्होंने कहा कि एक गतिशील वस्तु का द्रव्यमान स्थिर वस्तु से अधिक होता है। अतः समात्रा की अविनाशिता और ऊर्जा की अविनाशिता के दो नियमों के स्थान पर केवल समात्रा-ऊर्जा की तुल्यता और अविनाशिता का एक ही नियम है। आइस्टीन ने कहा कि सदियों तक सामान्य ऊर्जा को इसलिए भारहीन माना जाता रहा, क्योंकि इसका द्रव्यमान या समात्रा इतनी अधिक कम है कि इसकी उपेक्षा की जाती रही। यह भी हो सकता है कि इसकी मात्रा इतनी कम होने के कारण इसका पता न चला हो। उदाहरण के लिए अब हम जानते हैं कि तीन लाख टन पानी को उबालने के लिए आवश्यक, अत्यधिक ऊर्जा का भार एक औंस का बहुत सूक्ष्म हिस्सा होता है। अत. एक प्याला पानी उबालने के लिए आवश्यक ताप की समात्रा (ऊर्जा) प्रायः नगण्य होगी। आइंस्टीन ने समात्रा और ऊर्जा की तुल्यता दर्शाने के लिए एक गणित समीकरण बनाया। यह समीकरण है :

ई०=एम० सी०² ($E=MC^2$)

इस समीकरण मे ई० (E) अर्गों में ऊर्जा, एम० (M) ग्रामों में समात्रा और सी० (C) सेंटीमीटर प्रति सेकेण्ड में प्रकाश की गति दर्शाते हैं। प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड है। जब इस सख्या को इतनी ही सख्या से गुणा किया जाता है, जैसा कि समीकरण मे दिखाया गया है, तो हमें अत्यधिक बड़ी संख्या उपलब्ध होती है। अतः ई एक बेहद बड़ी संख्या हो जाती है। उदाहरण के लिए एक पौंड पदार्थ (कोयला या यूरेनियम) को पूरी तरह से ऊर्जा में बदल दिया जाए तो इससे लगभग ११ अरब किलोवाट ऊर्जा मिलती है। यह मोटे तौर पर उतनी बिजली के बराबर है, जितनी संयुक्त राज्य अमरीका के सब बिजलीघर एक महीने मे तैयार करते हैं। इस की तुलना एक पौंड कोयले के ज्वलन (आणविक नहीं रासायनिक परिवर्तन) से करिये, जिससे लगभग आठ किलोवाट ऊर्जा उत्पन्न होती है। एक पौंड कोयले की आणविक ऊर्जा लगभग दो अरब गुना अधिक है।

उस समय आइस्टीन के विचार केवल सैद्धान्तिक थे। अपने समीकरण की सत्यता प्रमाणित करने के लिए उनके पास प्रयोगों से उपलब्ध कोई जान-

कारी नहीं थी, पर उनका कहना था कि रेडियोधर्मिता और परमाणु के विखंडन के अनुसंधानों से इसके प्रमाण मिलेंगे।

हान-मिटनर-स्ट्रासमन-फिश के प्रयोगों में ऊर्जा उत्पन्न होने के समाचार से केवल पुरानी समस्या ही फिर नहीं उठी, बल्कि यह अत्यधिक तेज हो गई। बोह्र के अमरीका रवाना होने से पहले मिटनर और फिश ने अपने अनुसंधान के परिणामों के बारे में उनसे बातचीत की। उस समय तक इन अनुसंधानकर्ताओं ने इस जानकारी को प्रकाशित भी नहीं किया था। अमरीका पहुँचने पर बोह्र का स्वागत फर्मी ने बन्दरगाह में ही किया और डेन्मार्क के इस वैज्ञानिक ने उन्हें बताया कि वे अमरीका में कुछ महीने रहकर प्रिन्स्टन, न्यू जर्सी की संस्था में आइंस्टीन से विभिन्न वैज्ञानिक समस्याओं पर विचार करना चाहते हैं।

बोह्र को, अमरीका रवाना होने से पहले, जो जानकारी मिली थी, उससे वे अत्यधिक उत्तेजित थे। और उन्होंने ऊर्जा की उत्पत्ति का यह समाचार खुले रूप से अन्य वैज्ञानिकों को बताया। हान के यूरेनियम विखंडन प्रयोग सम्बन्धी लेख के गैली प्रूफ उनके पास भेजे गए तथा अमरीका की तीन अनु-संधान टोलियों ने इस प्रयोग को दोहरा कर इसकी सत्यता की पुष्टि की।

उस वर्ष २६ जनवरी को बोह्र ने वाशिंगटन में जार्ज वाशिंगटन विश्व-विद्यालय में सैद्धान्तिक भौतिकी के सम्मेलन में हिस्सा लिया। हर वैज्ञानिक अणु विखंडन की चर्चा कर रहा था। इस नई घटना पर अत्यधिक विचार हुआ और इस सम्बन्ध मे अनेकों मत प्रकट किए गए। इस घटना से अमरीका के वैज्ञानिक अत्यधिक उत्तेजित थे। इन प्रमुख परमाणु वैज्ञानिकों में स्पष्टतः एनरिको फर्मी भी थे।

फर्मी ने बोह्र से अपनी बातचीत के दौरान सुझाव दिया कि शृंखला प्रतिक्रिया द्वारा अणु विखंडन अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न करने की कुंजी बन सकता है। उनकी कल्पना थी कि यूरेनियम के परमाणु के विखंडन से अतिरिक्त न्यूट्रॉन उत्पन्न हो सकते है, जो यूरेनियम के अन्य परमाणुओं का विखंडन कर सकते हैं। इस प्रकार एक स्वयंपूर्ण प्रतिक्रिया शुरू की जा सकती है, जिसमें मुक्त हुआ प्रत्येक न्यूट्रॉन यूरेनियम के दूसरे परमाणु का अपना विखंडन करेगा, जिस प्रकार एक डोरी से बँधे पटाखे, एक पटाखे के चलने से स्वयं छूटने लगते है, जब तक कि सब पटाखे न छूट जाएँ। अतः परमाणु से ऐसा लगता है, मानो बारूद से भरे किसी जहाज को [illegible] गया हो। इसी प्रकार परमाणु कणों की ऊर्जा को उत्पन्न और [illegible]

जा सकता है; इस क्रिया द्वारा एक पौंड यूरेनियम के, ०'१ प्रतिशत से उत्पन्न ऊर्जा करोड़ों पौंड बारूद (टी० एन० टी०) के धमाके से उत्पन्न ऊर्जा जितनी होगी।

तो यह शृंखला प्रतिक्रिया अब तक हुए विभिन्न परीक्षणों के दौरान क्यों नही हुई ? नील्स बोह्र और उनके भूतपूर्व विद्यार्थी प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के जान ए० व्हीलर इस सवाल पर विचार करते रहे। तीन सप्ताह बाद अमरीकी भौतिकी संस्था की एक बैठक में उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि यूरेनियम के विखंडन के दौरान प्रयोग में प्रयुक्त पूरे यूरेनियम का विखंडन नही हुआ। उनका विश्वास था कि प्रयोग मे प्रयुक्त यूरेनियम के एक प्रतिशत से भी कम का विखंडन हुआ, क्योकि यूरेनियम के तीन समस्थानिकों में से केवल एक का ही विखंडन हो सकता है। इस विखंडन-योग्य समस्थानिक का परमाणु-भार २३५ है, जबकि ६६'३ प्रतिशत यूरेनियम का परमाणु-भार २३८ होता है। यूरेनियम-२३८ अत्यधिक स्थायी होता है। इसकी अर्ध-आयु लगभग ४ अरब वर्ष मानी जाती है, जैसा कि हम जानते है कि समस्थानिक एक ही तत्व के परमाणु होते है, जिनकी परमाणु-संख्या और रासायनिक गुण समान होते हैं, पर उनका परमाणु-भार भिन्न होता है।

बोह्र और व्हीलर ने तर्क दिया कि शृंखला-प्रतिक्रिया केवल यूरेनियम-२३५ से ही हो सकती है। उन्होंने कहा कि शृंखला प्रतिक्रिया को धीमी गति से चलने वाले न्यूट्रॉनो के प्रहार से शुरू किया जा सकता है। धीमी गति से चलने वाले इन न्यूट्रॉनो का अनुसंधान फर्मी ने १६३४ में किया था।

बेरिलियम से जो न्यूट्रॉन निकलते है, उनकी गति बहुत तेज होती है। वे १० हजार मील प्रति सैकंड की गति से चलते है। इतनी तेज गति से चलने वाले न्यूट्रॉनों को यूरेनियम-२३८ के परमाणु पकड़ लेते हैं, पर विखंडन नही होता। फर्मी ने सुझाव दिया कि इन न्यूट्रॉनों की गति को कम करने के लिए ग्रेफाइट (या भारी पानी) का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि तेज गति से चलने वाले न्यूट्रॉनो के इनसे टकराने से, उनकी कुछ ऊर्जा समाप्त हो जाती है और गति घट जाती है। इस क्रिया से इनकी गति को एक मील प्रति सैकंड तक घटाया जा सकता है। इतनी धीमी गति से चलने से ये न्यूट्रॉन यूरेनियम-२३८ के परमाणुओ के नाभिको से टकराते-टकराते अन्त मे यूरेनियम-२३५ के परमाणु के नाभिक से टकराएँगे और इसका विखंडन करेंगे।

बोह्र-व्हीलर के इस विचार की सत्यता का पता लगाने के लिए शुद्ध यूरेनियम-२३५ की आवश्यकता थी। सबसे पहली बार मिनेसोटा विश्वविद्यालय

के एलफ्रेड ओ० नीयर ने यूरेनियम के समस्थानिकों के मिश्रण से बहुत थोड़ी मात्रा में यूरेनियम-२३५ अलग किया था। उन्होंने केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखे जाने योग्य इस जरा से यूरेनियम-२३५ को फर्मी के पास कोलम्बिया विश्वविद्यालय भेजा। इस पर और जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी की प्रयोगशाला में तैयार यूरेनियम-२३५ के कणों पर कोलम्बिया साइक्लोट्रॉन में धीमी गति से चलने वाले न्यूट्रॉनों से प्रहार किया गया। और मार्च, १९४० में बोह्र और व्हीलर की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

नीयर ने इस जरा से यूरेनियम-२३५ को अलग करने में बहुत समय लगाया था। यह काम उन्होंने संमात्रा स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से किया था। पर यह विधि अत्यन्त धीमी थी। जिस गति से वे यूरेनियम-२३५ को अलग कर रहे थे, उससे इस महत्त्वपूर्ण एक पौंड समस्थानिक को इकट्ठा करने में ७५ हजार वर्ष लगते। अतः बड़े पैमाने पर परमाणु-ऊर्जा उत्पन्न करना अभी स्वप्न की ही बात थी।

पर इस सम्बन्ध में बहुत अधिक अनुसंधान होते रहे। १९४९ में आणविक प्रयोगों के बारे में सौ से अधिक लेख प्रकाशित हुए। पर इनमें से अधिकांश लेखों के बारे में इस समस्या के हल के विपरीत राय दी गई थी। इलेक्ट्रॉनिक्स नामक पत्रिका ने उस समय प्रकाशित लेखों से यह निष्कर्ष निकाला : "अभी इस बात को प्रमाणित करना है कि यूरेनियम-२३५ की शृंखला-प्रतिक्रिया एक वास्तविकता है......................इस बीच यूरेनियम-२३५ समस्थानिक पर नजर रखनी आवश्यक है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।"

पर सामान्य लोगों के लिए इस पर नजर रखने की कोई बात नहीं थी। मार्च, १९३९ में बोह्र डेन्मार्क वापस लौट गए। एक वर्ष बाद वे और अमरीकी अणुवैज्ञानिक स्वेच्छा से इस बात पर सहमत हो गए कि विज्ञान की इस विस्फोटक शाखा सम्बन्धी अनुसंधानों के और परिणामों को प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिए। इस सुरक्षात्मक कार्रवाई ने संसार के लोगों को इस सोच-विचार की स्थिति में छोड़ दिया कि क्या परमाणु-ऊर्जा का व्यावहारिक कार्यों में उपयोग हो सकता है। जब ६ अगस्त, १९४५ को इसकी सफलता का समाचार मिला, तो इसने अत्यधिक आशावादी वैज्ञानिकों को भी आश्चर्यचकित कर दिया।

आणविक ऊर्जा की नियंत्रित उत्पत्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात ही थी, बल्कि यह विज्ञान के इतिहास की सर्वाधिक क्रान्तिकारी उपलब्धि

पाँच वर्ष की छोटी अवधि में ही थोड़े से वैज्ञानिकों ने अन्य सैकड़ों वैज्ञानिकों के अनुसंधान-कार्यों की सहायता से उस असीमित शक्ति को मुक्त किया, जो संसार का कल्पनातीत विकास कर सकती है, या इसे नेस्तनाबूद कर सकती है।

परमाणु बम का निर्माण शुद्ध और व्यावहारिक विज्ञान की एकता का एक और उदाहरण है। सूर्य के ताप की रचना, विकिरण के गुणों और परमाणु की रचना सम्बन्धी शुद्ध सैद्धान्तिक खोजों के आधार पर प्रकाश विद्युत् सेल, मायाक्षि (मैजिक आई), इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी, रडार और टेलीविजन का निर्माण हुआ। जो सैद्धान्तिक वैज्ञानिक किसी यंत्र के बनाने में सहायता करने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, अब ऐसे सिद्धान्तों और गणित के समीकरणों का प्रतिपादन कर रहे थे, जिनके आधार पर ऐसे घातक अस्त्रों का निर्माण हुआ, जिनके बारे में पहले मनुष्य सोच भी नहीं सकता था।

कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों को छोड़ कर प्रायः प्रत्येक देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हजारों वैज्ञानिकों को इस बात का जरा भी आभास नहीं था कि वे किस 'दैत्य' की रचना करने में लगे हैं। वे केवल इतना जानते थे कि वे अपने कार्य से विज्ञान को समृद्ध कर रहे हैं। केवल अमरीका के स्त्री-पुरुषों ने ही नहीं, बल्कि संसार के प्रायः प्रत्येक कोने के स्त्री-पुरुषों ने आणविक ऊर्जा की उत्पत्ति के इस महान् कार्य में योग दिया।

आणविक भौतिकी के इस क्षेत्र में अमरीकी वैज्ञानिकों के अलावा जो अन्य देशों के वैज्ञानिक काम कर रहे थे, उनमें डेन्मार्क के नील्स बोह्र, इटली के एनरिको फर्मी, एमिलो सेग्री और ब्रूनो पोंटेकोरवो, आस्ट्रिया के वोल्फगैंग पॉली और विक्टर वेइसकोफ, हंगरी के लीओ जिलार्ड, एडवर्ड टेलर और जार्ज वान हेवेसी; सोवियत यूनियन के पीटर केपीट्जा और दिमित्रि स्कोबेलजीन; फ्रांस के आइरीन और फ्रेडरिक जोलियट क्यूरी तथा हम बोध; भारत के चन्द्रशेखर रमण और जापान के होदेकी यूकावा थे।

जब हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराने के बाद आणविक विखंडन के गुप्त नाटक का पर्दा हटा तो एक अत्यधिक उत्तेजनाप्रद स्थिति सामने आई। जब आणविक विखंडन की वास्तविकता को प्रदर्शित किया गया और शृंखला-प्रतिक्रिया की सम्भावना आंशिक रूप से सिद्ध हुई तो संसार इस परिणाम के लिए तैयार हो गया था। इस कार्य में जर्मनी के कुछ आणविक भौतिकी-विज्ञानी भी थे, जो इसके द्वारा एक अत्यधिक विस्फोटक पदार्थ के निर्माण की सम्भावना देख रहे थे। जिस समय हिटलर यूरोप में अपनी तलवार घुमा रहे थे, उनके वैज्ञानिक परमाणु शक्ति सम्बन्धी अनुसंधानों में लगे थे।

पर संयुक्त राज्य अमरीका मे स्थिति भिन्न थी। हिरोशिमा के छ दिन बाद संयुक्त राज्य अमरीका ने परमाणु बम संबंधी जो ऐतिहासिक सैनिक रिपोर्ट प्रकाशित की, उसमें हेनरी डी० स्मिथ ने लिखा कि "अमरीका में पैदा हुए अणुभौतिकी-विज्ञानी, विज्ञान को सैनिक कार्यों मे प्रयुक्त करने के विचार के बिल्कुल आदी नही थे, जिसके फलस्वरूप वे यह महसूस न कर सके कि इस सम्बन्ध में क्या करने की आवश्यकता है। अतः आरम्भ मे अणु अनुसधान सम्बन्धी जानकारी के प्रकाशन पर जोर देने का काम और अनुसंधानो के लिए आवश्यक धन सरकार से प्राप्त करने का आरम्भिक प्रयास अमरीका मे रहने वाले विदेशों में जन्मे थोडे से वैज्ञानिकों ने किया।" ये सब धार्मिक या राजनीतिक शरणार्थी थे, जो यूरोप से भाग कर अमरीका आए थे।

इन शरणार्थी वैज्ञानिकों में चालीस वर्षीय लियो जिलार्ड भी थे, जो उस समय आणविक ऊर्जा सम्बन्धी अनुसंधान मे लगे थे और कोलम्बिया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे थे। जिलार्ड अत्यधिक सक्रिय नाज़ी-विरोधी थे। और वे अमरीका आते समय अपने साथ वे उपकरण लेते आए थे, जो उन्होंने अपने अनुसंधानो के लिए तैयार किए थे। इन उपकरणों से उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में आगे अनुसंधान किए। ३ मार्च, १९३९ को वे और एक युवक कनाडियन वाल्टर जिन, आणविक विखंडन की सत्यता का पता लगाने के लिए परीक्षण कर रहे थे। उन्होने आवश्यक उपकरण लगाए। स्विच घुमाया और परीक्षण की प्रतिक्रिया और परिणामों को देखने के लिए लगे टेलीविजन पर आँख गडा कर बैठ गए। जिलार्ड ने लिखा, "उस रात मुझे यह ज्ञान हो गया कि संसार के लिए कष्ट की सृष्टि हो रही है।"

ज़िलार्ड आणविक विखंडन के उपयोगों की सम्भावना से अत्यधिक भयभीत हो उठे थे। १९३९ मे जर्मनी के गोला-बारूद मंत्रालय ने इसके उपयोग की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए एक अनुसंधान टोल। नियुक्त की। कल्पना कीजिए यदि हिटलर के वैज्ञानिक आणविक ऊर्जा के सिद्धान्त पर बम बनाने पर पूरी लगन से लग जाते है तो क्या होगा ? वे इसमें सफल हो सकते हैं और सारे संसार को अपना गुलाम बना सकते है। ये विचार ज़िलार्ड को भयभीत कर रहे थे। उस वर्ष जुलाई में ज़िलार्ड प्रिंसटन गए और अपने मित्र यूर्जीन पी० विगनर से इस सम्बन्ध में बातचीत की। विगनर भी हंगरी से उनके साथ अमरीका आए थे। इसके बाद जिलार्ड ने आइंस्टीन से निश्चय किया, जो उन दिनो पिकोनिक खाड़ी, लांग आइलैंड के पूर्वक अपनी छुट्टियां बिताने के लिए गए हुए थे। ज़िलार्ड ने

हंगेरियन शरणार्थी, भौतिकी विज्ञानी, एडवर्ड टेलर से अनुरोध किया कि वे अपनी कार में उन्हें वहाँ ले चलें।

विदेश में जन्मे एक अन्य अमरीकी, एलेग्जेंडर साच्स तो इस बात से इतने अधिक भयभीत हो उठे थे कि उनके दिमाग में विकृति आने का भय हो गया था। वे बचपन में ही सोवियत रूस से अमरीका आ गए थे। उन्होंने हारवर्ड और कैम्ब्रिज में शिक्षा पाई थी तथा बाद में फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट के अनौपचारिक सलाहकार और औद्योगिक परामर्शदाता बन गए थे। साच्स, ज़िलार्ड की इस बात से सहमत थे कि जल्दी-से-जल्दी इस सम्बन्ध में कुछ किया जाना चाहिए। वे आइंस्टीन के अत्यधिक प्रभाव के बारे में जानते थे। जब ज़िलार्ड ने साच्स को यह सुझाव दिया कि उन्हें प्रेसीडेंट से मिलना चाहिए, तो उन्होंने इसमें ज़रा भी विलम्ब नहीं किया। ११ अक्तूबर, १६३६ को उन्होंने आइंस्टीन का पत्र, व्हाइट हाउस में प्रेसीडेंट फ्रेंकलिन डी० रूज़वेल्ट को दिया।

रूज़वेल्ट ने इस खतरे को स्पष्ट रूप से समझा। उनमें तुरन्त कार्रवाई करने की सूझबूझ और साहस था। उन्होंने अपने उन सलाहकारों की एक न सुनी जो इस कार्य में सहायता देने में हिचकिचा रहे थे, या इसकी भयावह सम्भावनाओं से भयभीत नहीं थे। दूसरे महायुद्ध के शुरू होने के पाँच दिन के भीतर ही प्रेसीडेंट ने यूरेनियम सलाहकार समिति नियुक्त की। इसमें अलेक्जेंडर साच्स, एनरिको फ़र्मी, लियो ज़िलार्ड, ई० पी० विगनर, एडवर्ड टेलर और स्थल सेना तथा नौसेना के कई अफ़सर थे। समिति की बैठक २१ अक्तूबर, १६३६ को हुई। समिति के सैनिक सदस्यों ने यह राय प्रकट की कि संघीय सरकार को आणविक शक्ति सम्बन्धी अनुसंधानों के बीच में नहीं पड़ना चाहिए और इस काम को विश्वविद्यालयों पर छोड़ देना चाहिए। २० फरवरी, १६४० को इस कार्य के लिए सिर्फ ६ हजार डालर की राशि मंजूर की गई, जो इस काम के लिए सर्वथा अपर्याप्त थी।

इसी बीच अर्नेस्ट ओ० लारेंस को १६३२ में साइक्लोट्रॉन बनाने पर, १० दिसम्बर, १६३६ को नोबेल पुरस्कार दिया गया। इस बात से यह तथ्य सामने आया कि अन्य लोगों के पास भी साइक्लोट्रॉन हैं, जिनसे बड़े पैमाने पर आणविक विखंडन के प्रयोग किए जा सकते हैं। १६४० के आरम्भ में साच्स और आइंस्टीन इस यूरेनियम योजना की अत्यधिक धीमी प्रगति से असन्तुष्ट थे। उस वर्ष अप्रैल के महीने में साच्स फिर व्हाइट हाउस पहुँचे और प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट से इस काम को तेजी से कराने और अधिक धन देने की प्रार्थना की।

इस समय इंग्लैंड इस बात से बहुत घबरा रहा था कि जर्मनी परमाणु बम बना सकता है। ब्रिटेन के वैज्ञानिक रडार के आविष्कार और रडार सम्बन्धी अनुसंधान में फँसे हुए थे और उन्हें यह सूचना मिली कि कैसर विलहेल्म संस्था के अधिकांश वैज्ञानिकों को अणु-अनुसंधान का काम सौंपा गया है। अतः ब्रिटेन के वैज्ञानिक भी इस स्थिति के मुकाबले की तैयारी करने लगे। नोबेल पुरस्कार विजेता सर जार्ज पी० टामसन के नेतृत्व में अप्रैल, १९४० में एक समिति नियुक्त की गई। सर जार्ज टामसन इलेक्ट्रॉन के अनुसंधानकर्ता के पुत्र थे। ओटो आर० फ्रिश और जे० रोटब्लाट, लीवरपूल में कार्य कर रहे थे। और बाद में अनुसंधान का कार्य केवेंडिश प्रयोगशाला में भी शुरू किया गया। यहाँ एन० फैदर और ई० ब्रेश्चर की देख-रेख में यह काम शुरू हुआ। फ्रांस के वैज्ञानिक भी जर्मनी द्वारा परमाणु बम तैयार कर लेने के खतरे के प्रति जागरूक थे। जब जून, १९४० में हिटलर ने फ्रांस पर अधिकार कर लिया तो फ्रेड्रिक जोलियट-क्यूरी ने अपने सहयोगियों, एच० वान हालबन और एल० कोवारस्की को कैम्ब्रिज जाकर ब्रिटेन के परमाणु-विज्ञानियों की सहायता करने को कहा।

जिस समय ये फ्रांसीसी वैज्ञानिक ब्रिटेन रवाना हो रहे थे. प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने जून, १९४० में राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अनुसंधान समिति की स्थापना की और आरम्भिक यूरेनियम सलाहकार समिति इस नई समिति की उपसमिति बन गई। वर्ष की समाप्ति से पहले ही कोलम्बिया विश्वविद्यालय को श्रृंखला-प्रतिक्रिया के अध्ययन के लिए चालीस हजार डालर मिले। अगले वर्ष की गर्मियों में राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अनुसंधान समिति के निदेशक वन्नावर बुश ने प्रेसीडेंट रूजवेल्ट को अणु-अनुसंधान के कार्य की प्रगति का ब्योरा दिया और उन्हें के० टी० बेनब्रिज और सी० सी० लोरिटसेन के इंगलैंड की टामसन समिति की बैठकों में भाग लेने के बारे में भी रिपोर्ट दी। १९४१ की गर्मियों तक ब्रिटिश वैज्ञानिक इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि परमाणु बम बनाया जा सकता है और उन्होंने प्राकृतिक यूरेनियम अयस्क से यूरेनियम-२३५ को अलग करने में गैसीय विसरण का तरीका इस्तेमाल करने का सुझाव दिया। प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने क्लीमेंट एटली को सुझाव दिया, जो उन दिनों ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के सदस्य थे, कि ब्रिटेन के अणु-वैज्ञानिक, अमरीका के अणु वैज्ञानिकों से परमाणु-परीक्षणों और अनुसंधान के बारे में सहयोग दें। उनका कहना [illegible] इस सहयोग से यह कार्य जल्दी पूरा किया जा सकेगा। एटली ने तुरन्त इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

नवम्बर, १९४१ में हैरोल्ड सी० यूरे और जार्ज बी० पेग्राम को ब्रिटिश वैज्ञानिकों से बातचीत के लिए भेजा गया। इससे दो महीने पहले चर्चिल ने कुछ अनिच्छा से ही परमाणु बम के काम को उच्च प्राथमिकता देने का निश्चय किया था। उन्होंने कहा कि "यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूप से वर्तमान विस्फोटकों से सन्तुष्ट हूँ, पर मैं समझता हूँ कि मुझे प्रगति के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए।" सर जॉन एण्डरसन को ब्रिटेन के परमाणु बम कार्यक्रम के निरीक्षण का काम सौंपा गया और उन्होंने इंगलैंड के प्रमुखतम परमाणु-विज्ञानियों को एक स्थान पर इकट्ठा किया। इन वैज्ञानिकों में सर चार्ल्स डारविन (डारविन परिवार की चौथी पीढ़ी के सदस्य), रूडोल्फ ई० पियर्ल्स और फ्रांज ई० साइमन तथा न्यूट्रॉन के आविष्कारक सर जेम्स चाडविक भी थे।

यूरे उस सप्ताह अमरीका लौटे, जिसके रविवार को पर्ल हारबर पर बमबारी हुई थी। उन्होंने घर लौटने पर कहा कि इस कार्य को बहुत तेजी से किया जाना आवश्यक है। इसके बाद कार्य बहुत तेजी से होने लगा। पर्ल हारबर पर हमले से एक दिन पहले यह अन्तिम रूप से निश्चय कर लिया गया था कि परमाणु बम तैयार करने के लिए भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए। ग्यारह दिन बाद वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास कार्यालय के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अनुसंधान समिति का पुनर्गठन किया गया। अन्ततः १४ अगस्त, १९४२ को युद्ध-मन्त्री हेनरी एल० स्टिमसन के आदेश से मैनहटन इंजीनियर डिस्ट्रिक्ट नाम से परमाणु बम बनाने की योजना शुरू की गई।

अगले वर्ष के आरम्भ में ब्रिटेन और कनाडा के वैज्ञानिकों की एक संयुक्त टोली मौंट्रियल में मिलजुल कर काम करने के लिए पहुँची। उसी वर्ष बाद में सर जॉन एण्डरसन और अमरीकी वैज्ञानिकों तथा अन्त में रूजवेल्ट और चर्चिल की बातचीत के बाद ब्रिटेन के सब परमाणु-वैज्ञानिक संयुक्त राज्य अमरीका आ गए, जिससे परमाणु बम तैयार करने के काम को पूरी तेजी से किया जा सका।

यह अन्तिम कार्रवाई करने से पहले विभिन्न अनुसंधान टोलियों को कई महत्त्वपूर्ण समस्याएँ सौंपी जा चुकी थीं। इसमें से एक समस्या नियंत्रित और स्वयस्फूर्त आणविक शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू करने की थी। जनवरी, १९४२ में ही, यह निश्चय कर लिया गया था कि यह काम शिकागो विश्वविद्यालय में किया जाना चाहिए, जहाँ आर्थर एच० कॉम्पटन न्यूट्रॉन संबंधी अनुसधान कर रहे थे। अप्रैल मे विभिन्न केन्द्रों मे कार्य करने वाले, शिकागो की धातुकर्म प्रयोगशाला में मिलकर अनुसंधान करने के लिए पहुँचे। एनरिको फर्मी भी इन वैज्ञानिकों में थे।

इस कार्यक्रम के लिए पर्याप्त मात्रा में शुद्ध यूरेनियम की सबसे अधिक आवश्यकता थी और १६४१ में केवल कुछ पौंड शुद्ध यूरेनियम ही उपलब्ध था। १६४२ के आरम्भ में ऐमीज़ के आइजोवा स्टेट कालिज ने पहली बार यूरेनियम भेजा, जहां फ्रैंक एच० स्पेडिंग के निरीक्षण में इस धातु को शुद्ध करने का काम हो रहा था। इस बीच फर्मी को, जो उस समय भी शत्रु देश के नागरिक थे, ऐसा यंत्र तैयार करने का काम सौंपा गया, जिसके द्वारा नियंत्रित शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू की जा सके। उन्होंने और जिलार्ड ने पहले २६ फुट व्यास के एक गोलार्द्ध की बात सोची। अन्त में जो पाइल तैयार हुई, उसका ऊपरी भाग मधुमक्खी के छत्ते जैसा होने के कारण गोलार्ध जैसा ही लगता था। फर्मी ने यह पाइल शिकागो-विश्वविद्यालय की स्टेगफील्ड के स्क्वेश खेलने के कोर्ट में बनाई थी। इस पाइल में विशेष रूप से शुद्ध ग्रेफाइट की १२,४०० पौंड ईंटें लगी थीं, जिसमें निश्चित दूरी पर छेद किये गए थे और अलुमुनियम के डिब्बों में बन्द यूरेनियम ऑक्साइड और शुद्ध यूरेनियम रखा गया था, जिससे पाइल को ठण्डा रखने के लिए छोड़े जाने वाले पानी से इसका क्षरण न हो। ईंटों को इस प्रकार लगाया गया था, जिससे जाल-सा बन जाए, क्योंकि न्यूट्रॉनो की गति को धीमा करने के लिए यही सर्वोत्तम व्यवस्था मानी गई थी।

इस अनुसंधान के बारे में बहुत अधिक सैद्धान्तिक विचार, गणना-विचार-विमर्श और योजना का संशोधन हुआ। ग्रेफाइट की ईंटों को उस समय तक बारम्बार लगाया और हटाया गया, जब तक इसमें काम करने वाले व्यक्ति कोयला-खानों के मजदूरों की तरह काले न हो गए। यही कारण है कि यूरेनियम की अणु-भट्टी का नाम पाइल रखा गया। परीक्षण के दिन फर्मी, कॉम्पटन और ज़िन, कोर्ट के फर्श से दस फुट ऊँचे छज्जे पर लगे कण्ट्रोल पेनल के सामने खड़े थे। यहाँ हरबर्ट एल० एण्डरसन भी उपस्थित थे, जिन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में फर्मी के अधीन पी-एच० डी० की डिग्री के लिए कार्य करते समय उन्हें अंग्रेजी भी पढ़ाई थी।

जार्ज एल० वील को अन्तिम नियंत्रण छड़ का सचालन करना था, जो प्रतिक्रिया को नियंत्रण मे रखने के लिए लगाई गई थी। एक अन्य छड़ सुरक्षा के लिए लगाई गई थी और यह स्वचालित रूप से नियन्त्रित थी। इसे पाइल के मध्य मे लगाया गया था और इसे दो विद्युत्-मोटर चलाते थे, जो एक आयनीकरण कक्ष से नियंत्रित होते थे। जब अत्यधिक संख्या मे न्यूट्रॉन निकलने लगते, जिससे खतरा उत्पन्न होता, तो आयनीकरण कक्ष की गैस मे विद्युत् की मात्रा बहुत बढ़ जाती। इससे एकदम मोटर चालू हो जाते और पाइल में न्यूट्रॉनों को सोखने वाली कैडमियम की पर्त-चढ़ी इस्पात की छड़ प्रवेश कर जाती।

सुरक्षा की एक और भी कार्रवाई की गई थी। इसके अन्तर्गत आपात-स्थिति मे प्रयोग के लिए एक और सुरक्षा छड़, जिप, पाइल से बाहर निकाल कर डोरी से छज्जे मे बाँध दी गई थी। यदि स्वचालित छड़ किसी कारण मे कार्य न कर सके, तो इस रस्सी को काट देने के लिए नार्मन हिलबेरी को तैनात किया गया था। अन्ततः तीन व्यक्तियो की एक द्रव नियंत्रण टोली को पाइल के ऊपर एक प्लेटफार्म पर नियुक्त किया गया। इन लोगों को इस बात का प्रशिक्षण दिया गया था कि आवश्यकता पड़ते ही ये केडमियम के एक लवण के पानी के घोल को तुरन्त पाइल पर डाल सकें।

फर्मी का कहना था कि "एक कलम विकिरण की तीव्रता को दर्शाने के लिए रेखा खींचेगी। जब पाइल में शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू होगी, तो यह कलम एक ऐसी रेखा खींचना शुरू करेगी, जो ऊपर ही ऊपर की ओर जाएगी और किसी भी स्थिति मे एक स्तर पर आगे नहीं बढ़ेगी। दूसरे शब्दों में यह घातीय रेखा होगी।" फर्मी ने सुबह नौ बजकर पैंतालीस मिनट पर नियंत्रण-छड़ों को बाहर निकालने का आदेश देकर प्रतिक्रिया शुरू की। छः मिनट बाद जिन ने, जिप नामक छड़ को हाथ से खींच कर बाहर निकाल लिया और इसे छज्जे की रेलिंग से बाँध दिया। दस बजकर सैंतीस मिनट पर फर्मी ने व्हील को आदेश दिया कि वे वर्नियर छड़ को उस समय तक बाहर निकालें जब सिर्फ इसका तेरह फुट भाग पाइल के भीतर रह जाए। इस समय फर्मी की आँखें नियंत्रण-बोर्ड पर गड़ी हुई थीं। आधा घण्टा बीतने पर स्वचालित सुरक्षा-छड़ को बाहर निकाला गया। गीजर काउण्टरों की क्लिक की आवाज तेज हो गई और वातावरण मे बहुत तनाव आ गया।

फर्मी ने कहा कि "मुझे बहुत भूख लगी है। हमे दोपहर के भोजन के लिए चलना चाहिए।" और उनके सहयोगी दोपहर दो बजे वापस लौटने के लिए चल पडे। इसके बाद काम शुरू होने पर और व्यवस्थाएँ की गयी। आगे आदेश दिए गए तथा इस प्रयोग के लिए उपस्थित लोगो में, केवल एकमात्र लड़की, लियोना मार्शल ने, उपकरणों के और अधिक प्रेक्षण लिये। तीन बज कर इक्कीस मिनट पर फर्मी ने अपने स्लाइड-रूल मे न्यूट्रॉनों की संख्या में वृद्धि की गति की गणना की। कलम उस स्थान पर पहुँच चुकी थी, जिसकी फर्मी ने भविष्यवाणी की थी। और फिर अचानक, शान्ति से तथा स्पष्ट प्रसन्न भाव मे फर्मी ने अपने स्लाइड रूल को बन्द करते हुए कहा, "यह प्रतिक्रिया स्वयस्फूर्त है। वक्र रेखा घातीय है।" फिर इसके बाद २८ मिनट तक इस पाइल मे प्रतिक्रिया जारी रखी गई। वह कार्य जो एक आधुनिक चमत्कार ˜ समीप पहुँच गया था, पूरा हुआ। २ दिसम्बर, १९४२ का दिन इतिहास पहला दिन था, जब मनुष्य ने सफल और स्वयस्फूर्त आणविक शृंखला

प्रतिक्रिया शुरू की थी। इस प्रयोग के समय उपस्थित ऐनरिको फर्मी और ४१ अन्य व्यक्तियों के अलावा कोई अन्य व्यक्ति यह नहीं जानता था कि बुधवार के उस तीसरे पहर को मानवता के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आ गया था।

आर्थर एच० कॉम्पटन ने यह प्रयोग देखा था और उन्होंने जेम्स बी० कोनांट को ट्रंककाल से इसकी सूचना दी। कोनांट वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास-कार्यालय की ओर से इस पूरी योजना के अध्यक्ष थे। अपनी टेलीफोन वार्ता मे कॉम्पटन ने कोनांट से कहा, "इटालियन नौचालक नई दुनिया मे पहुँच गया है। यह उससे छोटी दुनिया है, जितनी कि वह समझता था।" कोनाट ने 'उससे छोटी दुनिया' का यह अर्थ लगाया कि परमाणु-पाइल छोटी है और इसकी ऊर्जा उतनी उग्र नहीं है, जितनी कि आशा थी। उन्होंने यह निष्कर्ष स्वय निकाला, क्योंकि पहले से कोई सकेत निर्धारित नहीं किए गए थे। फिर कोनाट ने पूछा, "क्या वहाँ के आदिवासियों का रुख मित्रतापूर्ण है?" कॉम्पटन ने इसका मतलब समझा कि वे यह जानना चाहते हैं कि क्या फर्मी इस प्रयोग को आगे तेजी से करना चाहते हैं। उन्होंने इसका उत्तर दिया, "हाँ, उनका रुख बहुत मित्रतापूर्ण है।" और इसके बाद फर्मी और उनके सहयोगियों ने काम को आगे बढ़ाने में जरा भी विलम्ब नही किया।

इस यूरेनियम पाइल मे काम करना बहुत खतरनाक था, जिसके कुछ भाग को गुब्बारे के कपड़े से ढका गया था, जिससे न्यूट्रॉन सोखने वाली हवा को बाहर रखा जा सके। यह आशा थी कि अपने आप हुए विखडन से आणविक प्रतिक्रिया शुरू होगी और यह विखंडन, न्यूट्रान या किसी अन्य स्रोत, जैसे ब्रह्माण्ड किरणों के प्रभाव से होगा। जैसे ही पाइल का क्रान्तिक आकार होगा, विखंडन शुरू हो जायगा। क्रान्तिक आकार उस स्थिति को कहते है, जब विखडन से प्राप्त न्यूट्रॉनों की संख्या उन न्यूट्रॉनों की संख्या के बराबर हो जाती है, जो अन्य पदार्थों द्वारा सोख लिये जाते हैं या प्रतिक्रिया के क्षेत्र से बाहर चले जाते हैं। एक अत्यधिक बड़ी पाइल में विखडन से अत्यधिक न्यूट्रॉन उत्पन्न हो जाने से ऐसी शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू हो सकती है, जिस पर नियंत्रण न रखा जा सके। अतः उपलब्ध जानकारी के आधार पर इस पाइल के क्रान्तिक आकार की गणना की गई, जिससे पता चला कि वस्तुतः एक गलती हुई है; क्योंकि बाद में पता चला कि पाइल उस समय से पूर्व ही क्रान्तिक आकार प्राप्त कर लेती है, पहले जिसकी कल्पना की गई थी। यद्यपि फर्मी और उनके सहयोगी इस विषय की जटिलताओं से पूर्ण परिचित नहीं थे, पर उन्होंने हर सम्भव सावधानी बरती थी।

यदि इस पाइल पर काम करने वाले व्यक्ति आकस्मिक मृत्यु से बच भी जाएँ, तो शरीर मे प्रवेश कर जाने वाली किरणों और जहरीले रेडियो-सक्रिय

कणों द्वारा धीरे-धीरे अत्यधिक पीडादायक ढंग से मृत्यु का भय बना हुआ था। आणविक विघटन के दौरान ये किरणें और जहरीले रेडियो-सक्रिय कण उत्पन्न होते है। इस खतरनाक विकिरण से अनुसंधानकर्ताओं की रक्षा के लिए इस पाइल के चारों ओर बहुत सावधानी से रेडियोसक्रिय कणों और अन्य विकिरण को सोखने वाले पदार्थ की पाँच फुट मोटी दीवार बनाई गई। इस पाइल के संचालन की ऐसी व्यवस्था की गई, जिसके द्वारा दूर बैठे वैज्ञानिक ही यह कार्य कर सकें।

धातुकर्म प्रयोगशाला को शुरू में जो काम सौंपा गया था, वह नियंत्रित शृंखला-प्रतिक्रिया के हो जाने से पूरा हो चुका था। पर यह पाइल एक ऐसा यंत्र भी सिद्ध हुई, जो एक नया तत्त्व बड़ी मात्रा मे उत्पन्न कर सकती थी। कृत्रिम उपायों से निर्मित इस तत्त्व के जन्म की कहानी मई, १९४० को एक दिन शुरू होती है, जब दो व्यक्तियों ने बर्कले में लारेंस का साइक्लोट्रॉन प्रयोग कर यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों से प्रहार किया। यह रोम में फर्मी के उस महत्त्वपूर्ण प्रयोग के छः वर्ष बाद की बात है। ये दो व्यक्ति एडविन एम० मैकमिलन और फिलिप एच० एवलसन थे।

यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों से प्रहार के दौरान एक न्यूट्रॉन यूरेनियम-परमाणु के जटिल नाभिक मे प्रवेश कर गया, जिसका आपेक्षिक भार २३८ है। इसके फलस्वरूप २३९ आपेक्षिक भार के एक और भारी यूरेनियम-परमाणु की सृष्टि हुई। यूरेनियम-परमाणु का यह भारी समस्थानिक अत्यधिक अस्थिर सिद्ध हुआ। इसके नाभिक में न्यूट्रॉनों और प्रोटॉनों की जो संख्या रहती है, उससे इसमें निरन्तर तनाव बना रहता है। इस तनाव को कम करने के लिए नाभिक में उपस्थित न्यूट्रॉनों में से एक न्यूट्रॉन विभाजित हो जाता है। आप जानते हैं कि प्रत्येक न्यूट्रॉन में एक इलेक्ट्रॉन और एक प्रोटॉन होता है। उक्त न्यूट्रॉन के विभाजित होने से इलेक्ट्रॉन बाहर निकल जाता है और उसका प्रोटॉन अंश नाभिक में ही बना रहता है। इसके फलस्वरूप नाभिक मे ९२ के स्थान पर ९३ प्रोटॉन हो जाते हैं। यह एक बिल्कुल नया तत्त्व बन गया, जिसके गुण बिल्कुल भिन्न थे। दूसरे शब्दों मे, भारी यूरेनियम २३९, रेडियो-सक्रिय है और इसकी अर्ध-आयु २३ मिनट है और यह तुरन्त विखंडित होकर तत्त्व-९३ में परिवर्तित हो जाता है।

मैकमिलन ने इस तत्त्व का नाम नेप्चूनियम रखा और बाद मे उन्हें इस अनुसंधान-कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। नेप्चूनियम एक विचित्र तत्त्व है। इसका आधा भाग अपनी स्थिति से असन्तुष्ट-सा रहने के कारण ढाई दिन से कम समय में ही अपने आपको एक अन्य तत्त्व मे परिवर्तित कर लेता है। इस नए तत्व-९४, का जन्म भी नेप्चूनियम की तरह ही होता है; यानी इसके

नाभिक का एक न्यूट्रॉन दो हिस्सों में विभाजित हो जाता है और इलेक्ट्रॉन भाग बाहर निकल जाता है, जबकि शेष प्रोटॉन भाग नाभिक मे ही बना रहता है और नॉभिक के भीतर उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या बढाता है, जो अब ६३ के स्थान पर ६४ हो जाती है।

इस तत्त्व-६४ का उत्पादन और अनुसंधान पहली बार १६४० के उत्तरार्ध मे ग्लेन टी० सीबोर्ग और उनके सहयोगियों ने किया। सीबोर्ग ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय मे शिक्षा पाई थी और जब उन्होने प्लुटोनियम का अनुसधान किया तो उनकी उम्र केवल २८ वर्ष थी। यह तो शुरुआत भर थी, क्योंकि अगले कुछ वर्षों मे ही वे उन कई अनुसंधान टोलियों के अध्यक्ष बन गए, जिन्होने आवर्तसारिणी मे यूरेनियम से आगे के सात और तत्त्वो की सृष्टि की।

प्लुटोनियम एक बहुत स्थायी तत्त्व है। इस पर न्यूट्रॉनों के प्रहार का बहुत प्रभाव होता है और इसका विखंडन यूरेनियम-२३५ की तरह ही होता है, जिसमे निकलने वाले न्यूट्रॉन शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू कर सकते है। यह बहुत महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इससे विज्ञान को एक ऐसा नया तत्त्व मिल गया था, जिसका उपयोग परमाणु बम बनाने मे यूरेनियम-२३५ के स्थान पर किया जा सकता है। इसके अलावा इस नए तत्त्व को यूरेनियम-२३५ की बनिस्वत यूरेनियम से कही आसानी से अलग किया जा सकता है।

तोले जाने योग्य प्लुटोनियम की मात्रा तैयार होने से तीन महीने बाद दिसम्बर, १६४२ मे पहली नियत्रित शृंखला-प्रतिक्रिया की गई थी। मैनहटन डिस्ट्रिक्ट के प्रारम्भिक कार्य की तीसरी बडी समस्या का भी हल दिखाई पड़ रहा था। अब यूरेनियम-२३५ का उत्पादन होने लगा था। प्राकृतिक यूरेनियम से इसे तेजी से अलग करने के तरीकों की ईजाद हुई थी। सबसे पहले १६१६ मे एक अंग्रेज, फ्रांसिस डब्ल्यू० एस्टन ने जो विद्युत् चुम्बकीय तरीका अपनाया था, उसे लारेंस आजमा रहे थे। दूसरा तरीका जिसे गैसीय विसरण का तरीका कहते है, ब्रिटेन के परमाणु वैज्ञानिकों ने स्वतन्त्र रूप से निकाला था और हैरोल्ड सी० यूरे तथा जान डनिंग कोलम्बिया विश्वविद्यालय में इस तरीके से यूरेनियम-२३५ अलग कर रहे थे। जब दर्जनों प्रयोगशालाओं और उनके सैकडों वैज्ञानिकों ने इन तरीकों का सफल उपयोग किया तो परमाणु बम बनाने के लिए बड़ी मात्रा में यूरेनियम-२३५ और प्लुटोनियम तैयार करने का निश्चय किया गया। इसके लिए एक साहसपूर्ण कदम की आवश्यकता थी। उत्पादन के तरीकों की आजमाइश के लिए पहले छोटा-सा यंत्र लगाने के स्थान निश्चय किया गया कि बड़े पैमाने पर इनके उत्पादन की तुरन्त जानी चाहिए। दूसरा कोई चारा भी नही था। पता चला था माणु बम बनाने मे लगे थे।

वस्तुत: जर्मन लोग परमाणु बम पर बहुत कम धन खर्च कर रहे थे। जर्मनों को युद्ध में जल्दी विजय की आशा थी और वे सोचते थे कि परमाणु बम तैयार करने में कम-से-कम बीस वर्ष लगेंगे।

१६४२ के अन्त में बहुत बड़ी मात्रा में प्लुटोनियम और यूरेनियम-२३५ तैयार करने का निश्चय किया गया। आरम्भ में प्लुटोनियम की अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा से जो परीक्षण किए गए थे और उनसे जो वैज्ञानिक जानकारी मिली थी, उसके आधार पर कई बड़ी-बड़ी यूरेनियम पाइलें चलाने का निश्चय किया गया। इन पाइलों को बड़े कारखानों में लगाया जाना था। इसका अर्थ था कि कंकरीट की बड़ी-बड़ी इमारतों के पूरे नगर ही बनाए जाने चाहिएँ। इनमें से एक नोक्सविले के पास ओकरिज, टेनेसी में बनाया गया, जहाँ १६४३ के आरम्भ में दु पोंट कम्पनी ने एक संयत्र चालू किया। इसमें हवा से ठंडी की जाने वाली यूरेनियम-ग्रेफाइट पाइल भी लगी थी, जिसमें प्लुटोनियम तैयार किया जाना था।

इसी स्थान पर लारेंस के विद्युत् चुम्बकीय तरीके से शुद्ध यूरेनियम-२३५ के उत्पादन के लिए एक और संयत्र लगाया गया। क्राइस्लर कारपोरेशन ने जो संयत्र बनाया, उसमें गैसीय विसरण के तरीके से यह कार्य किया गया।

इस काम के लिए दूसरा स्थान ग्रैंड कोली बाँध के पास कोलम्बिया नदी पर चुना गया। इसका नाम हेनफोर्ड इंजीनियर वर्क्स रखा गया और यह संयंत्र पासको, वाशिंगटन के पास के एक निर्जन स्थान पर लगाया गया। दुपोंट कम्पनी द्वारा निर्मित पानी से ठंडा होने वाला प्लुटोनियम-संयत्र सितम्बर, १६४४ में चालू हुआ।

ओकरिज और हेनफोर्ड के इन विशाल संयत्रों के चालू होने से पहले ही सेंटा फी से बीस मील दूर लॉस एलमॉस के पास समुद्र की सतह से सात हजार फुट की ऊँचाई पर एक निर्जन प्रदेश में परमाणु बम प्रयोगशाला बनाई जा रही थी। यहाँ पहला परमाणु बम बनाया जाना था। इस प्रयोगशाला में जो जल्दी ही संसार भर की सर्वोत्तम भौतिकी प्रयोगशाला बन गई, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय से एक तीस-वर्षीय युवक को बुलाया गया। यह वैज्ञानिक, कुशाग्र बुद्धि, बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न और मेधावी सैद्धान्तिक भौतिकी-विज्ञानी जे० रावर्ट ओपेनहीमर था। ओपेनहीमर ने लॉस एलमॉस की प्रयोगशाला को जल्दी ही एक अत्यधिक कुशल संस्था में बदल दिया और इसमें आणविक भौतिकी के प्रमुखतम वैज्ञानिकों को नियुक्त किया गया। शिकागो विश्वविद्यालय के एस० के० एलिसन उनके दाहिने हाथ थे।

जिन वैज्ञानिकों ने लॉस एलमॉस की प्रयोगशाला में काम किया या जिनसे परामर्श लिया गया, उनमें एलबर्ट आइस्टीन, अर्नेस्ट ओ० लारेंस, रावर्ट ए०

तेज गति से चलाया गया और अन्त में २ अरब डालर की लागत पर यह युग-प्रवर्तक कार्य सम्पन्न हुआ। अणु-शक्ति के अनुसंधान की लम्बी खोज पूरी हो गई थी, पर इस विजय के द्वारा आधुनिक मानव ने अपने लिए नई और अत्यधिक जटिल समस्याएँ पैदा कर ली थीं।

मनुष्य के पास ऐसा कोई भी हथियार नही था, जिससे वह परमाणु बम का मुकाबला कर सके। फर्मी इस बात को अस्वीकार न कर सके। अन्य लोग भी इस बात से सहमत थे और हैरोल्ड सी० यूरे ने समस्त लोगों की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहा कि "यदि हम इस सम्बन्ध मे तुरत उचित कार्रवाई नही करते, तो हम भय खायेंगे, भय मे सोयेंगे, भय मे ही जियेंगे और भय मे ही मरेंगे।" विज्ञान के इतिहास में अन्य अनेकों शानदार और महत्त्व-पूर्ण अनुसंधान हुए, लेकिन उनमे से कोई भी इससे अधिक व्यापक, तेज, भयावह और क्रान्तिकारी नही था। अतीत के सब वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी यह आतककारी सम्भावना पैदा नही हुई थी कि मानवता एक बटन दबाकर सामूहिक आत्महत्या कर सकती है।

एक अन्य दृष्टि से भी आणविक विखंडन का अनुसंधान पहले की विज्ञान-उपलब्धियों से भिन्न था। मनुष्य के इतिहास में पहली बार हमारे हाथ मे ब्रह्माण्ड की बुनियादी शक्ति आ गई थी। एकाएक विज्ञान और टेकनालॉजी एक शताब्दी आगे बढ गए थे और मनुष्य के हाथ में इतनी अधिक शक्ति आ गई थी कि जिसके द्वारा वह समस्त ससार के लोगों की गरीबी मिटाकर उन्हे सुख का जीवन बिताने के साधन उपलब्ध करा सकता था।

उस समय केवल सयुक्त राज्य अमरीका के पास ही परमाणु बम होने के कारण उसने सयुक्त राष्ट्र संघ में इसके नियत्रण का प्रस्ताव पेश करना सर्वथा उचित समझा। १३ जून, १९४६ को संयुक्त राष्ट्र सघ के अणुशक्ति आयोग की पहली बैठक मे अमरीकी प्रतिनिधि बर्नार्ड वारूच ने परमाणु बमो के नियत्रण की योजना पेश की। ६ दिन बाद सोवियत रूस की ओर से आन्द्रेयी ग्रोमिको ने एक अन्य प्रस्ताव पेश किया। अब तक इनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकार नही किया जा सका है और ससार इस समय भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने का तरीका ढूंढने मे लगा है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का हल मिलने तक मैनहटन डिस्ट्रिक्ट योजना के वैज्ञानिक तथा अन्य संस्थाओं के वैज्ञानिकों ने आणविक अनुसधान को जारी रखा। बहुत से नए तथ्यों का पता चला, नई विधियां विकसित हुई और अणु-शक्ति के अन्य अनेक उपयोगो का पता चला। मनुष्य ने ऐसे कई नए तत्त्व बनाए, जिनका अब तक पता नही था। बीसों उपयोगी रेडियो समस्थानिक तैयार किए गए और पहले जिन चार रासायनिक तत्त्वों के अनुसधान की

घोषणा की गई थी, उनकी परिस्थिति को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया गया।

१९५४ में संयुक्त राज्य के अणु शक्ति आयोग ने फर्मी को आणविक ऊर्जा के नियंत्रित विकास में महत्वपूर्ण योग देने के लिए २५ हज़ार डालर के विशेष पुरस्कार की घोषणा की। यह पुरस्कार पाने वाले वे पहले व्यक्ति थे। जनसाधारण को यह ज्ञान नहीं था कि इस समय फर्मी बहुत बीमार हैं और उन्हें कैंसर हो गया है तथा जिनका एक महीने पहले आपरेशन किया गया था। यह पुरस्कार पाने के बारह दिन बाद ५३ वर्ष की उम्र में एनरिको फर्मी की मृत्यु हो गयी। जिस समय संसार भर में उनकी मृत्यु का शोक मनाया जा रहा था, इटली गणराज्य के प्रेसीडेंट लुइगी ईनाउदी ने उनकी विधवा को यह तार भेजा, "इटली इस विशिष्ट व्यक्ति की स्मृति में बहुत शोक और सम्मान से अपना सिर झुकाता है, जिसने अणु-नीतिकी की समस्याओं को सुलझा कर अपने नाम को सदियों के लिए विज्ञान की उन्नति से जोड़ दिया है।"

आणविक विखंडन के सफल प्रयोगों से रेडियो-समस्थानिकों सम्बन्धी अनुसंधान बहुत तेज हुआ। आज अणु-भट्टियों में समस्थानिक तैयार किए जा रहे हैं। ये अणुभट्टियाँ साइक्लोट्रॉनों से एक अरब गुना अधिक उत्पादन कर रही हैं। अधिकांश रेडियो समस्थानिक, रसायनों को अणु-भट्टियों में रखकर और उन पर न्यूट्रॉनों से प्रहार कर तैयार किए जाते हैं। कई बार इस तरह वास्तविक तत्वांतरण होता है यानी नए तत्व मिलते हैं। समस्थानिकों की सैंकडों नई किस्में तैयार हुई हैं और इन्हें संसार भर के अनुसंधानकर्ताओं को दिया गया है।

रेडियो-सक्रिय समस्थानिक एक नया और क्रान्तिकारी साधन हैं, पर इनके प्रति बहुत सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। दो दिन से कम समय में ही समस्थानिकों को संसार के किसी भी भाग में भेजा जा सकता है। इन्हें विभिन्न मोटाई की दीवारों के सीसे के डिब्बों मे बन्द किया जाता है। डिब्बे की मोटाई विकिरण की वेधन-शक्ति को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है। सर्वाधिक प्रचलित रेडियो समस्थानिकों में आयोडीन-१३१, फास्फोरस-३२, कोबाल्ट-६० और कारबन-१४ हैं। आयोडीन-१३१ का उपयोग केवल गलग्रंथि के कैंसर के अध्ययन में ही नही हो रहा है, वल्कि गलग्रंथि के रोगों की चिकित्सा मे भी यह उपयोगी है। रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट-६० को रेडियम के स्थान पर ऐक्स किरणों से कैंसर के इलाज मे इस्तेमाल किया जा रहा है। १९४८ मे इस समस्थानिक की ईजाद हुई। हाल के अनुसधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि फास्फोरस-३२, कृषि-अनुसधानो के लिए अत्यधिक उपयोगी है। इसके उपयोग से हमें पता चला है कि फास्फेट उर्वरकों को जमीन मे किस प्रकार मिलाया जाना चाहिए, जिससे बहुत अधिक और बढ़िया फसल हो

वर्कले की लारेंस प्रयोगशाला के मेल्विन काल्विन के कुशल हाथों में कार्बन-१४ फोटो-सश्लेषण सम्बन्धी अनेकों रहस्यों को उद्घाटित कर रहा है। फोटो-सश्लेषण वनस्पतियों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रासायनिक प्रतिक्रिया है।

अनेकों समस्थानिकों ने उद्योगों की भी बहुत-सी समस्याओं को सुलझाने में सहायता दी है। उदाहरण के लिए कृत्रिम रेडियो-सक्रिय लोहा और गंधक की सहायता से इस्पात के निर्माता यह अनुसधान कर रहे हैं कि लोहे और धमन-भट्टियों से मिलने वाले धातुमल के बीच गंधक का विनिमय कैसे हो सकता है। इजनों के पुर्जों, रबर के टायरों और भारी मशीनों के गतिशील हिस्सों में घर्षण और ताप का क्या प्रभाव होता है, इसका अध्ययन भी समस्थानिकों की सहायता से किया जा रहा है। अनुमान है कि १९५७ में रेडियो-समस्थानिकों के उपयोग से अमरीकी उद्योगों को पचास करोड़ डालर की बचत हुई।

वैज्ञानिक अनुसधानों के बाद अक्सर विचित्र मोड़ आते हैं। कार्बन-१४ को ही लीजिए। १९४६ में विलार्ड एफ० लिवी ने, जो उस समय शिकागो विश्व-विद्यालय में थे, देखा कि रेडियो-सक्रिय समस्थानिकों से ३० हजार वर्ष ईसा-पूर्व की वस्तुओं की भी उम्र निर्धारित की जा सकती है। अत्यधिक प्राचीन काल की ममियों के लकड़ी के तावूतों और कपड़ों, प्राचीन निवासों की जली हुई लकडी के टुकड़ों, अवशेषों, शिल्प तथ्यों, पूर्व-ऐतिहासिक गुफाओं में मिली हड्डियों और कोयलों के टुकड़ों तथा हाल में मृतसागर में मिले वर्तीलेख, जो सम्भवतः एक हजार नौ सौ वर्ष पुराने हैं, की निश्चित आयु का पता उनमें मौजूद कार्बन-१४ द्वारा विकसित इलैक्ट्रॉनों की संख्या से लगाया जा सकता है। पुरातत्त्व-विज्ञानी और पूर्व-ऐतिहासिक युग के विद्यार्थी इसे अपने अनुसंधान कार्यों का सबसे अच्छा और विश्वसनीय साधन मानते हैं।

यह तो केवल शुरुआत भर है। भविष्य में इन रासायनिक कणों से मनुष्य की चिकित्सा, फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों के नियंत्रण, पौधों और कीटों के शरीर-क्रिया विज्ञान के अध्ययन, क्रोमोसोमों के परिवर्तनों के कारण और क्रिया, खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने तथा औद्योगिक अनुसधान के विविध क्षेत्रों में इनके उपयोग की सम्भावनाएँ असीमित हैं। अमरीकी वैज्ञानिकों के इस सृजनात्मक कार्य से अनुसंधान के एक नए ससार के द्वार खुल गए हैं।

इन नए और आश्चर्य में डाल देने वाले उपयोगों के अलावा हमें इस अनुसधान से ऊर्जा का एक असीमित स्रोत मिल गया है। अणु-शक्ति मनुष्य के अनेकों कार्यों में सहायक हो सकती है। उसे कारखानों, खानों, खेतों और फैक्टरियों के कमरतोड़ काम से मुक्ति दिला, संसार भर के करोड़ों अभावग्रस्त लोगों का जीवन सुखमय बना सकती है। प्रत्येक आणविक पाइल एक जबर्दस्त

बिजलीघर भी है। इसे चलाते समय यूरेनियम का विखंडन होता है और बहुत बड़ी मात्रा में ताप उत्पन्न होता है। यह ताप पानी को भाप में परिवर्तित करता है, जो बिजलीघर की टर्बाइन को चलाती है। इस प्रकार अणुशक्ति उत्पन्न करने वाले इन संयंत्रों से बिजली उत्पन्न करके किसी भी काम में लाई जा सकती है।

१९५५ में कम-से-कम आठ अणु-भट्टियाँ चालू थी या बनाई जा रही थीं, या कोई देश इन्हें अन्य देशों के लिए बना रहे थे। जिन देशों में ये अणु-भट्टियाँ है, या बनाई जा रही है, उनमे आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, इंग्लैंड, फ्रांस, भारत, नार्वे, स्पेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका हैं। इनमें से कुछ में अणु-शक्ति से बिजली बनाई जा रही है। अणु-शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ ने जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया था, उसमें इन तथा अन्य तथ्यों की जानकारी दी गई। अणु-शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के कार्यक्रम को प्रेसीडेन्ट आइजनहावर ने शुरू किया था। उक्त सम्मेलन उस वर्ष के अगस्त के महीने में जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड मे हुआ था।

अणु-शक्ति संसार के कम विकसित देशों के लिए कैसे सहायक बन सकती है? ये सब देश सस्ती और बहुत बड़ी मात्रा में बिजली चाहते हैं, इनमें से कुछ के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में प्रयास भी किया है। पाकिस्तान और ईराक ने कहा है कि वे अपने यहाँ छोटी अणु-भट्टियाँ बनाना चाहते हैं। ब्राज़ील और अर्जेन्टाइना ने कहा है कि ईंधन की कमी के कारण उनका औद्योगिक विकास रुका हुआ है। अणुशक्ति का यह शान्तिपूर्ण उपयोग कर हम इन अविकसित देशों के करोड़ों लोगों की समस्याएँ सुलझा सकते हैं। तीन महाद्वीप बहुत उत्सुकता से इस सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

प्रेसीडेण्ट आइजनहावर ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के समक्ष परमाणु के शान्तिपूर्ण उपयोगों के सम्बन्ध में भाषण करते हुए कहा कि हमें ऐसा रास्ता निकालना चाहिए, जिसके द्वारा मनुष्य की अनुसंधान प्रतिभा को उसके जीवन को सुखी और सफल बनाने में लगाया जा सके। उन्होंने कहा कि वे अन्य देशों को आरम्भ में प्रयोगों के लिए और आगे-चलकर औद्योगिक उपयोग के लिए अणु-भट्टियाँ बनाने के वास्ते उधार पट्टे पर मुफ्त में [illegible] ईंधन देने को तैयार हैं। १८ महीने बाद उन्होंने अपने इस उपहार की [illegible] को दुगना कर दिया और फिर १९५६ में उन्होंने इस घोषणा से [illegible] हलचल मचा दी कि अमरीका और अन्य देशों में परमाणु के शान्तिपूर्ण [illegible] के लिए ८८ हजार पौंड यूरेनियम-२३५ दिया जाएगा। [illegible] में विभंजनीय यूरेनियम की उक्त राशि का आधा भाग उन देशों को

जाएगा, जो यूरेनियम-२३५ तैयार नहीं करते। प्रेसीडेण्ट आइजनहावर ने इस सम्बन्ध में कहा कि यह इस विश्वास पर आधारित कार्य है कि विश्व शान्ति को दृढ़ करने में परमाणु का उपयोग हो सकता है।

अनेक वर्ष पहले एल्फ्रेड नोबेल ने कहा था कि "मेरी इच्छा है कि मैं एक ऐसा भयावह पदार्थ बना सकूं, जिसकी विनाश की शक्ति इतनी अधिक हो कि युद्ध असम्भव हो जाए।" अणु के विखडन और सगलन ने उनकी यह इच्छा पूरी होने का वातावरण तैयार किया है। श्रोपेनहीमर ने इस सम्बन्ध में कहा, "अणु युग की एक नवीनता यह है कि ससार को एक कानून के अन्तर्गत पारस्परिक दृष्टिकोण को समझ कर मानवता की भलाई के लिए समान खतरे के मुकाबले के लिए एक होना होगा।"

२ दिसम्बर, १९४२ को परमाणु युग का जन्म हुआ, जब पहली शृंखला-प्रतिक्रिया पाइल का पहला सफल प्रयोग हुआ। पाँच वर्ष बाद इसकी स्मृति मे शिकागो विश्वविद्यालय मे एक पट्ट की स्थापना हुई। इस दिन हिरोशिमा मे, उस पर परमाणु बम गिराए जाने की दूसरी वर्षगाँठ पर हडताल की गई, न्यू मैक्सिको के एलमोगोर्डो रेगिस्तान के उस स्थान पर एक बड़ा सफेद लकड़ी का क्रास लगाया गया, जहाँ पहले परमाणु बम का विस्फोट किया गया था। विभिन्न वर्गों के लोगों का एक छोटा सा दल उस स्थान पर पहुँचा और उन्होंने वहाँ सब देशो का झण्डा फहराया तथा संसार के लोगों से अपील की कि वे युद्ध-समाप्ति का सकल्प करें। उसी समय हिरोशिमा पर गिराए गए परमाणु बम के विनाश से बचे लोग भी यह प्रार्थना कर रहे थे कि मानवता युद्ध से मुक्त हो जाए।

प्राचीन कीमियागर मनुष्य को वृद्धावस्था से मुक्त रखने और उसकी आयु को बढाने का अमर पेय तैयार करने मे असफल रहे। आधुनिक विज्ञान ने, आणविक विखडन और सगलन के द्वारा इस सपने को साकार करने के साधन हमारे हाथो मे दे दिए है। पर यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हम इस अणु-युग मे मानवता को युद्ध मे फँसने से बचाने की तुरंत व्यवस्था करें, जिसका अर्थ इस अणु-युग में मानवता का सम्पूर्ण विनाश है।